दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

उद्घोषित: 04 दिसंबर, 2023

नि.प्र.अ. (मू.प.) 13/2016 एवं सि.वि.आ. 6041/2016

मनु गुप्ता ..... अपीलार्थी

द्वारा: श्री असलम अहमद, सुश्री चारु श्रीयम सिंह और श्री अभिषेक द्विवेदी, अधिवक्तागण। सुश्री आकांक्षा कौल, न्याय-मित्र सह श्री मानेक सिंह, श्री अमन साहनी और श्री हर्ष ओझा, अधिवक्तागण।

बनाम

सुजाता शर्मा एवं अन्य ..... प्रत्यर्थीगण

द्वारा: सुश्री माला गोयल, प्र-1 के लिए अधिवक्ता। सुश्री अनीता त्रेहान, डॉ. सरिता धूपर, सुश्री काजल चंद्रा, सुश्री प्रेरणा चोपड़ा, श्री दिव्य पुरी और सुश्री साक्षी आनंद, अधिवक्तागण।

श्री ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव, श्री देव प्रकाश शर्मा, श्री मनोज यादव और श्री

उमेश कुमार गुप्ता, प्र-9 और 10 के अधिवक्तागण।

कोरम:
माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेश कुमार कैत
माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नीना बंसल कृष्णा

निर्णय

न्या. नीना बंसल कृष्णा

"असली परिवर्तन, स्थायी परिवर्तन, एक समय में एक कदम से होता है"

– रूथ बेडर गिन्सबर्ग

1. ऐतिहासिक रूप से पुरुष और महिलाएं समान रूप से पैदा हुए थे। हालाँकि, समय के साथ, सभ्यता की प्रगति और समाज के पदानुक्रमित विभाजन के साथ, महिलाओं को लैंगिक भूमिकाओं के अनुसार सीमित किया गया है, जो एक प्रकार से भेदभाव का कृत्य बन गया है, जिसने उन्हें समाज में दोयम दर्जे पर धकेल दिया है। परिणामस्वरूप, एक समय समतावादी समाज सती प्रथा, बाल विवाह, यौन उत्पीड़न, घरेलू हिंसा, दहेज उत्पीड़न और इस तरह की अन्य कुरीतियों के रूप में दुराग्रह और भेदभाव का आधार बन गया। विधान-मंडल ने समय-समय पर इस पक्षपात को दूर करने और महिलाओं को मानव जाति द्वारा तैयार की गई ऐसी विशिष्ट बेड़ियों से मुक्त करने के लिए

सुधार लाए हैं, जिससे वह अपनी पूर्ण क्षमता हासिल करने और पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ने में सक्षम हो सकीं।

2. सशक्त विधानों के बावजूद, व्यापक दुविधा और गहराई तक व्याप्त रूढ़िवादिता के कारण वास्तविक परिवर्तन धीमा रहा है। यहीं पर न्यायालय कानूनों के कार्यान्वयन को सुगम बनाने के लिए महत्व रखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हितधारकों के लिए कार्यान्वयन होता है। यह बात सच साबित हुई है, विशेषकर महिलाओं को अधिकार प्रदान करने वाले कानूनों के मामले में। यह सर्वविदित है कि यद्यपि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के तहत महिलाओं को संपत्ति में स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया गया, लेकिन कटु सत्य यह है कि महिलाओं को अपनी परिस्थितियों और परिवार के सदस्यों के कारण संपत्ति में अपने अधिकार को छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। महिलाओं के ऐसे अधिकारों को बरकरार रखने में न्यायालयों की दृढ़ भूमिका ने उन्हें अपने लंबे समय से लंबित अधिकारों के लिए आंदोलन करने के लिए प्रेरित किया है, जिससे न्यायालय गेम चेंजर बन गए हैं।

3. इसी तरह, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में 2005 का संशोधन, जिसने महिलाओं को पुरुषों के बराबर सहदायिकी का अधिकार प्रदान किया है, महिला सशक्तिकरण से संबंधित विधि में एक और सुधार का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। हालाँकि, समाज में महिलाओं के हाशिए पर रहने की अटूट निश्चितता इतनी

गहराई से व्याप्त है कि एक महिला द्वारा हिंदू संयुक्त परिवार में कर्ता का स्थान, एक ऐसी भूमिका जो परंपरागत रूप से पुरुषों द्वारा ग्रहण की जाती थी, लेने की संभावना को खतरे में माना जाता है।

4. पुरुषों के जैसे ही समान अधिकार, सहदायिकी के अधिकार दिए जाने के बावजूद, एक महिला को कर्ता के रूप में स्वीकार करने में यह अनिच्छा वर्तमान मामले में सामने आई है, जिस पर आगे की कार्रवाई करने का दायित्व अब हम पर है।

5. वर्तमान अपील अपीलार्थी/मनु गुप्ता (मुख्य वाद में प्रतिवादी सं. 1) द्वारा दिनांक 22.12.2015 के निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके तहत वादी (प्रत्यर्थी सं. 1) को स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता एंड संस, हिन्दू संयुक्त परिवार का कर्ता घोषित करने के लिए घोषणा के वाद को अनुमति दी गई है।

6. अपीलार्थी और प्रत्यर्थीगण हिंदू हैं और मिताक्षरा विधि द्वारा शासित हैं, वे स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता, पुत्र स्वर्गीय श्री सुंदर दास गुप्ता, के वंशज हैं, जिनका निधन 01.10.1971 को हो गया था। यह सच है कि स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता ने 05.01.1963 से डी.आर. गुप्ता एंड संस (हि.सं.परि.) के नाम से एक हिंदू संयुक्त परिवार (एचयूएफ) का गठन किया था, जिसमें वे स्वयं और उनके पांच पुत्र शामिल थे। एचयूएफ के सदस्यों की सूची नीचे दिए गए चार्ट में दर्शाई गई है:-

		श्री डी.आर गुप्ता (मृत्यु की तिथि- 01.10.1971) श्रीमती राम पियारी (पत्नी) (मृत्यु की तिथि- 02.09.1977)		
श्री कृष्ण मोहन (पुत्र) जन्म तिथि 5.1:1921 मृत्यु की तिथि 18.2.1984 श्रीमती शांता के.मोहन (पत्नी) प्रत्यर्थी सं.16	श्री एम.एन.गुप्ता (पुत्र) जन्म तिथि 7.11.1925 मृत्यु की तिथि 17.11.2001 श्रीमती जानकी गुप्ता (पत्नी) प्रत्यर्थी सं.7	श्री आर.एन. गुप्ता, (पुत्र) जन्मतिथि, 20.03.1927 मृत्यु की तिथि 14.02.2006 श्रीमती राज गुप्ता (पत्नी)- प्रत्यर्थी सं.11	श्री बी.एन. गुप्ता. (पुत्र) जन्मतिथि- 20.07.1928 मृत्यु की तिथि- 18.01.2003 . श्रीमती ललिता गुप्ता (पत्नी)-प्रत्यर्थी सं.4	श्री जे.एन. गुप्ता (पुत्र) जन्मतिथि- 28.03.1931 मृत्यु की तिथि- 17.11.2001 श्रीमती वीना गुप्ता (पत्नी)- प्रत्यर्थी सं.14

पुत्री सुजाता शर्मा (नी सुजाता मोहन) प्रत्यर्थी सं.1 जन्म तिथि; 20.9.46	पुत्री सुनीता सुदर्शन (सुनीता गुप्ता) जन्म तिथि 30.11.1952 मृतक एलआर के प्रत्यर्थी सं.6क एवं 6ख द्वारा प्रतिनिधित्व	पुत्री मीरा साहनी (नी मीरा गुप्ता) जन्मतिथि 06.09.1953 प्रत्यर्थी सं.9	पुत्री अदिति देसाई (नी अदिति गुप्ता) प्रत्यर्थी सं.17 जन्मतिथि 16.08.1963 पुत्र मनु गुप्ता अपीलार्थी सं.1 जन्मतिथि 25.05.1955	अनीता त्रेहान (नी अनीता गुप्ता) जन्मतिथि 19.08.1967 प्रत्यर्थी सं.12
राधिका सेठ (नी राधिका मोहन) जन्म तिथि; 18.09.1951 प्रत्यर्थी सं.15	पुत्र मुकुल गुप्ता जन्म तिथि 04.07.1958 प्रत्यर्थी सं.5	पुत्री गार्गी गुप्ता (नी गार्गी गुप्ता) जन्मतिथि: 05.10.1958 प्रत्यर्थी सं.10	पुत्र वासु प्रत्यर्थी सं.2 जन्मतिथि: 05.07.1958	पुत्री सरिता धूपर (नी सरिता गुप्ता) जन्मतिथि: 02.07.1971 प्रत्यर्थी सं.13

		पुत्र भरत गुप्ता जन्मतिथि 19.02.1963 प्रत्यर्थी सं. 8	पुत्री गीता लाल (नी गीता गुप्ता) प्रत्यर्थी सं.03 जन्मतिथि: 29.11.1960	

7. स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता ने स्वेच्छा से अपनी अचल संपत्ति, जिसे सामान्यतः नं. 4, यूनिवर्सिटी रोड, दिल्ली के नाम से जाना जाता है, तथा मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड में शेयरों के अलावा अन्य चल और अचल संपत्तियों को भी साझी संपत्ति में डाल दिया और उन्होंने दिनांक 05.01.1963 को एक शपथ-पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने घोषणा की कि सभी संपत्तियां हिंदू अविभाजित परिवार (एचयूएफ) की होंगी, जिसके वे उत्तरजीविता के अधिकारों वाले "कर्ता" होंगे और अविभाजित सहदायिकता के अन्य सभी संपत्ति के संबंध में अधिकार उनकी पत्नी और उनके पांच पुत्रों अर्थात् स्वर्गीय श्री के.एम. गुप्ता, स्वर्गीय श्री एम.एच. गुप्ता, स्वर्गीय श्री आर.एन. गुप्ता, स्वर्गीय श्री बी.एन. गुप्ता और स्वर्गीय श्री जे.एन. गुप्ता के सदस्यों के पास होंगे। डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ", इस प्रकार निम्नलिखित अचल और चल संपत्तियों के स्वामी बन गए जो वर्तमान वाद की विषय वस्तु हैं। अचल एवं चल संपत्तियों का विवरण निम्नानुसार है: -

(क) अचल संपत्ति –

() नं. 4, यूनिवर्सिटी रोड, दिल्ली। यह संपत्ति स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता द्वारा श्री जे.सी. रॉबर्ट्स से पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 15.07.1943 के माध्यम से खरीदी गई थी। दिनांक 15.07.1943 के विक्रय विलेख की एक प्रति अभिलेख पर रख दी गई है।

(ख) चल संपत्ति –

(i) मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड के शेयर,

(ii) मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड के पास जमा राशि,

(iii) बैंक ऑफ इंडिया, आसफअली रोड में बैंक खाता,

(iv) विजया बैंक, अंसारी रोड में बैंक खाता।

8. यह सच है कि, डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का आयकर मूल्यांकन किया गया है और वह एचयूएफ संपत्ति के लिए रिटर्न दाखिल करता रहा है और एचयूएफ का आवंटित पैन नंबर एएए एचडी 4230 एम था। अचल संपत्ति को छोड़कर, एचयूएफ से संबंधित सभी संपत्तियों का 1980 के दशक में निपटान कर दिया गया था।

9. समय के साथ स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता के सभी पुत्रों की मृत्यु हो गई। श्री आर.एन. गुप्ता "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" के अंतिम कर्ता थे, जिनकी मृत्यु 14.02.2006 को हो गई। इस प्रकार, यह प्रश्न उठा कि उनकी मृत्यु के बाद एचयूएफ के कर्ता का ओहदा किसे मिलेगा। प्रत्यर्थी सं. 1 के साथ-साथ "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" के अन्य सदस्यों ने प्रत्यर्थी सं. 1,

सुजाता पुत्री स्वर्गीय श्री के.एम. गुप्ता के एचयूएफ के कर्ता बनने के संबंध में विभिन्न ई-मेल का आदान-प्रदान किया, जिन्होंने हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2006 में संशोधित विधि के मद्देनजर, सबसे बड़े सहदायिक होने के नाते "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" के अगले कर्ता होने का दावा किया।

10. श्री मुकुल गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 5), सुश्री सुनीता सुदर्शन - जिनका प्रतिनिधित्व उनके न्या.प्र. (प्रत्यर्थी सं. 6ए और 6बी) द्वारा किया गया, श्री भरत गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 8), सुश्री अनीता त्रेहान (प्रत्यर्थी सं. 12), डॉ. सरिता धूपर (प्रत्यर्थी सं. 13) और श्रीमती राधिका सेठ (प्रत्यर्थी सं. 15) सहदायिक हैं। सुश्री जानकी गुप्ता (प्रत्यर्थी संख्या 7), श्री राज गुप्ता (प्रत्यर्थी संख्या 11), सुश्री वीना गुप्ता (प्रत्यर्थी संख्या 14) और श्रीमती शांता के. मोहन () एचयूएफ के सदस्य हैं। उन सभी ने सुश्री सुजाता शर्मा के एचयूएफ का कर्ता होने पर कोई आपत्ति नहीं उठाई है।

11. श्री मनु गुप्ता (अपीलार्थी), श्री वासु गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 2), सुश्री गीता लाल (प्रत्यर्थी सं. 3) और सुश्री अदिति देसाई (प्रत्यर्थी सं. 17), **ये वह सहदायिक हैं जिन्होंने प्रत्यर्थी सं. 1 के कर्ता बनने का विरोध किया है।** सुश्री मीरा साहनी (प्रत्यर्थी सं. 9) और सुश्री गार्गी गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 10) ने शुरू में विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष एक शपथ-पत्र प्रस्तुत किया था जिसमें न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी व्यक्ति को कर्ता के रूप में स्वीकार करने पर सहमति व्यक्त

की गई थी, हालांकि, बाद में उन्होंने यह कहते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 1 विधि के तहत सहदायिक नहीं है, एक पात्र कर्ता होने का दावा पेश किया।

12. अपीलार्थी/मनु गुप्ता ने प्रत्यर्थी सं. 1 के दावे पर आपत्ति जताते हुए स्वयं को एचयूएफ का कर्ता घोषित किया और इस हैसियत से रक्षा संपदा अधिकारी के साथ पत्राचार किया।

13. *इसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी सं. 1/सुजाता शर्मा द्वारा 2006 में वर्तमान सिविल वाद दायर किया गया, जिसमें घोषणा की मांग की गई कि वह "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" की कर्ता है।*

14. मामला इस प्रकार था, प्रत्यर्थी सं. 9/सुश्री मीरा साहनी ने *मीरा साहनी बनाम श्रीमती राज गुप्ता* शीर्षक वाला सि.वाद. (मू.प.) संख्या 142/2008 का एक वाद दायर किया, जिसमें घोषणा की गई कि 18.01.1999 का मौखिक समझौता, 01.04.1999 का समझौता ज्ञापन और 17.09.2000 की वसीयत को अमान्य घोषित किया जाए और "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का विभाजन, खातों का प्रतिपादन और परिवार के अन्य सदस्यों को संपत्ति में उसके हिस्से के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश की मांग की गई। प्रत्यर्थी सं. 1/सुजाता शर्मा उक्त वाद में प्रतिवादी सं. 4 थी और उसने सुश्री मीरा साहनी द्वारा किए गए दावों का विरोध किया था।

15. अभिवचनों के आधार पर, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 15.09.2008 के आदेश के माध्यम मुद्दे विरचित किए गए थे, जो इस प्रकार थे: -

"1. क्या वाद का मूल्यांकन उचित रूप से किया गया है और उस पर उचित न्यायालय फीस का भुगतान किया गया है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

2. क्या घोषणा हेतु वाद अपने वर्तमान स्वरूप में धारणीय है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

3. क्या कोई सहदायिक संपत्ति या एचयूएफ मौजूद है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

4. क्या वादी डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ की सदस्य है? और यदि हाँ, तो इसका क्या प्रभाव है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

5. क्या वादी के हित 1984 में उसके पिता श्री के.एम. गुप्ता के निधन के बाद अलग हो गए थे? (साबित करने का दायित्व प्रतिवादी पर है)

6. डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ के अस्तित्व को मानते हुए, क्या वादी को एचयूएफ का अभिन्न अंग माना जा सकता है, विशेष रूप से 1977 में उसके विवाह के बाद, और क्या वादी कभी भी एचयूएफ के मामलों में सहदायिक के रूप में शामिल हुई है, और इसका क्या प्रभाव होगा? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

7. डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ के अस्तित्व को मानते हुए, क्या वादी सहदायिक है और कानूनी रूप से कर्ता बनने की हकदार है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

8. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005 में किए गए संशोधन का क्या प्रभाव है और क्या इससे संयुक्त परिवार की अवधारणा या सहदायिकी विधि में इसकी संपत्तियों में कोई परिवर्तन आया है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

9. राहत।

16. *प्रत्यर्थी सं. 1/सुजाता शर्मा ने अपने दावे के समर्थन में अभि.सा.1 के रूप में गवाही दी। उन्होंने अभि.सा.2/रितु ग्रोवर, अभि.सा.3/श्री एन.वी. सत्यनारायण, रक्षा संपदा अधिकारी और अभि.सा.4/श्री संजय सक्सेना, बुक बाइंडर, दिल्ली अभिलेखागार विभाग, दिल्ली सरकार, दिल्ली से भी पूछताछ की।*

17. अपीलार्थी/मनु गुप्ता ने ब.सा.1 के रूप में गवाही दी तथा प्रत्यर्थी सं. 1, 9 और 10 के अधिवक्तागण द्वारा उनसे प्रतिपरीक्षा की गई।

18. आक्षेपित निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश ने कहा कि कर्ता बनने के लिए आवश्यक योग्यता एचयूएफ का सहदायिक होना है। एकमात्र बाधा जो किसी महिला को कर्ता बनने से रोकती थी वह इस आवश्यक योग्यता की कमी

थी। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (*जिसे आगे अधिनियम, 1956 के रूप में संदर्भित किया जाएगा)* की संशोधित धारा 6 को हिंदू पुरुषों और महिलाओं को उत्तराधिकार के समान अधिकार देने के लिए सामाजिक रूप से लाभकारी कानून के रूप में 2005 में पेश किया गया था; वादी की शादी ने सहदायिकता में उसके अधिकारों को प्रभावित नहीं किया क्योंकि प्रावधान स्पष्ट रूप से विवाह जैसे किसी भी अपवाद या प्रतिबंध को स्वीकार किए बिना एक महिला के पूर्ण होने के वैधानिक अधिकार को परिभाषित करता है। इस अयोग्य कारक के हटने से, सबसे बड़ी महिला सहदायिक को एचयूएफ का कर्ता बनने से कोई भी नहीं रोक सकता है। यह माना गया कि संशोधन अधिनियम, 2005 द्वारा अधिनियम, 1956 की धारा 6 में लाया गया संशोधन, किसी महिला के सहदायिक होने के अधिकार पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता है और उसे एचयूएफ की संपत्ति सहित मामलों का प्रबंधन करने के लिए कर्ता के औहदे से वंचित नहीं किया जा सकता है। वाद का निर्णय वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में दिया गया और उसे डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ का कर्ता घोषित किया गया।

19. ***दिनांक 22.12.015 के निर्णय से व्यथित होकर श्री मनु गुप्ता द्वारा वर्तमान अपील दायर की गई है।***

20. **अपीलार्थी/मनु गुप्ता द्वारा निर्णय को चुनौती** मुख्यतः इस आधार पर दी गई है कि उसकी चचेरी बहन अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 1 की शादी 28.02.1969 को हुई थी और वह अपने वैवाहिक घर में एचयूएफ की सक्रिय सदस्य बन गई थी। परिणामस्वरूप वह "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" की गतिविधियों से अलग हो गई और आज तक न तो उसने किसी सहदायिक गतिविधियों में भाग लिया है और न ही वह अपनी शादी के बाद एचयूएफ की किसी भी संपत्ति में निवास करती है, जैसा कि उसके स्वयं के बयान से भी स्पष्ट होता है। यह दावा किया जाता है कि कर्ताधर्म का उद्गम हिंदू रीति-रिवाजों और कानूनों से है, जिन्हें परिवार के सदस्यों की राय या कार्यों से प्रभावित नहीं किया जा सकता है। संशोधन के पीछे का उद्देश्य केवल संपत्ति के विभाजन की योजना में समानता प्रदान करना है तथा महिलाओं को कर्ताधर्म की भूमिका प्रदान करना नहीं है, क्योंकि यह अभी भी परिवार में सबसे वरिष्ठ पुरुष सहदायिक को ही उपलब्धहै, जैसा कि हिंदू विधि की मिताक्षरा स्कूल के तहत प्रावधान है। यह दोहराया गया है कि कर्ताधर्म के संबंध में विधि संशोधन द्वारा अपरिवर्तित रहा है और स्थापित स्थिति यह है कि केवल *सबसे वरिष्ठ हिंदू पुरुष ही कर्ता* बन सकता है।

21. इस प्रकार, अधिनियम, 1956 में 2005 के संशोधन के बावजूद, एक पुत्री अपने पिता के परिवार के एचयूएफ की कर्ता नहीं बन सकती है, हालांकि उसे केवल एक संयुक्त हिंदू परिवार के प्रबंधक के रूप में मान्यता दी जा सकती है।

22. आगे यह कहा गया है कि अधिनियम, 1956 *(2005 में संशोधित)* की धारा 6 केवल पुत्रियों के सहदायिक में रुचि रखने के अधिकार को मान्यता देती है और इसे कर्ता बनने के उसके अधिकार के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। सहदायिक के रूप में मान्यता प्राप्त करने के इस अधिकार को छोड़कर, एचयूएफ के संबंध में कोई अन्य परिवर्तन नहीं लाया गया है, क्योंकि एचयूएफ अभी भी हिंदू विधि के मिताक्षरा स्कूल द्वारा शासित है। इस विधि विद्यालय के अनुसार, संयुक्त हिन्दू परिवार वह है, जिसके वंशज एक ही पुरुष पूर्वज से आते हैं तथा जिसमें पत्नियां और अविवाहित पुत्रियां सदस्य के रूप में शामिल होती हैं।

23. इसके अलावा, विद्वान एकल न्यायाधीश इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि अधिनियम, 1956 की धारा 4 स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि अधिनियम, 1956 का केवल उन रीति-रिवाजों पर अध्यारोही प्रभाव पड़ता है जिन्हें अधिनियम के प्रावधानों द्वारा स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है और एचयूएफ के प्रबंधन से संबंधित कोई प्रावधान अधिनियम के तहत संहिताबद्ध नहीं किया गया है।

24. *"कर्ताधर्म"* प्रथागत विधि और परंपराओं का एक सम्मान है। यह देखते हुए कि संशोधन अधिनियम, 2005 महिलाओं को सहदायिक के रूप में वैधानिक मान्यता प्रदान करता है, हमें प्रथागत विधि को वैधानिक अधिकार के साथ जोड़कर पढ़ना चाहिए, जिससे स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि

संशोधन द्वारा प्राप्त की जाने वाली समानता सहदायिक संपत्ति में समान हित के संबंध में थी। इस प्रकार, अपनी विशिष्ट भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के साथ कर्ता बनने का अधिकार, एक महिला को सहदायिक के रूप में दिए गए संपत्ति में समान अधिकारों के वैधानिक अधिकार से पूरी तरह अलग है।

25. यह दावा किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश यह समझने में विफल रहे कि विवाह के बाद पुत्री अपने पिता के परिवार की सदस्य नहीं रहती, क्योंकि वह अपने पति के परिवार की सदस्य बन जाती है और विवाह होने पर उसका गोत्र (वंश) भी बदल जाता है। विवाह इस बात का प्रतीक है कि विवाह के बाद पुत्री का अपने पति के परिवार में एक नया जन्म होता है और परंपरागत रूप से, विवाह के बाद महिला को एक नया नाम दिया जाता है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 1, 1969 में अपने विवाह के बाद डी.आर. गुप्ता परिवार की सदस्य नहीं रही तथा अपने वैवाहिक परिवार की सदस्य बन गई। यह विधि की स्थापित स्थिति है कि एक व्यक्ति एक ही समय में दो संयुक्त हिंदू परिवारों का सदस्य नहीं हो सकता है। यह तर्क दिया जाता है कि एक महिला को अपने पति के घर में कुछ अधिकार प्राप्त होंगे, जबकि इसका विपरीत संभव नहीं है। इससे महिला के अधिकारों में असमानता बढ़ जाती है क्योंकि उसे अपने पिता की संपत्ति और पति की संपत्ति में अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार, एक

महिला अपने पति के परिवार की सदस्य बन जाती है और अपने पिता के परिवार में सहदायिक बनी रहती है; हालांकि, पुरुष केवल अपने पिता के परिवार में सहदायिक होता है।

26. यह बात दोहराई जाती है कि विवाह के बाद महिला अपने पिता के परिवार की सदस्य नहीं रहती। इसके लिए *नरेन्द्र बनाम के. मीना (2016) 9 एससीसी 455; कामेश पंजियार बनाम बिहार राज्य* 2005 (2) एससीसी 388 पर भरोसा किया गया है। इस प्रकार, विद्वान एकल न्यायाधीश यह समझने में विफल रहे कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास विवाह के बाद वर्तमान वाद दायर करने का अधिकार नहीं था।

27. यह भी कहा गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने *श्रेया विद्यार्थी बनाम अशोक विद्यार्थी* एआईआर 2016 एससी 139 में शीर्ष न्यायालय के निर्णय पर विचार करने में विफल रहे, जहां यह माना गया था कि 2005 के संशोधन के बाद भी महिला एक कर्ता नहीं बन सकती है क्योंकि यह *कर्ताधर्म* पर तत्कालीन कानूनी स्थिति को बरकरार रखता है जो अधिनियम, 1956 की संशोधित और असंशोधित धारा 6 की वास्तविक प्रकृति से स्पष्ट है।

28. *विधि आयोग ने अपनी 174वीं रिपोर्ट दिनांक 05.05.2000 में* यह सिफ़ारिश करते हुए कि महिलाओं को सहदायिक के रूप में सभी समान अधिकारों का उपयोग करना चाहिए, यह भी कहा कि एक महिला कर्ता नहीं हो

सकती। इन सिफारिशों के आधार पर विधानमंडल ने अधिनियम, 1956 की धारा 6 में संशोधन किया; यदि इस संशोधन का उद्देश्य महिला के कर्ता बनने के अधिकार को मान्यता देना होता, तो संशोधन में स्पष्ट रूप से ऐसा कहा गया होता। इस प्रकार, दिनांक 22.12.2015 का आक्षेपित निर्णय अधिनियम, 1956 में संशोधन अधिनियम, 2005 द्वारा लाए गए कानून में परिवर्तन की गलत व्याख्या पर आधारित है।

29. आगे यह भी तर्क दिया गया है कि कर्ता परिवार की ओर से निर्णय लेता है जिसका उन पर बाध्यकारी प्रभाव पड़ता है। उसके पास अपने परिवार को मुकदमेबाजी, मध्यस्थता और करार में आपसी सहमति से प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है और इसलिए, कर्ता के लिए परिवार का अभिन्न सदस्य होना अनिवार्य है। कर्ता की भूमिका बहुमुखी है और यह प्रबंधकीय भूमिका तक सीमित नहीं है। वह परिवार का वित्तीय मुखिया होने के साथ-साथ उनका धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मुखिया भी होता है। कर्ता द्वारा निभाए जाने वाले कई हिंदू रीति-रिवाज हैं जिन्हें केवल सबसे वरिष्ठ पुरुष ही निभा सकता है, जैसे मुखाग्नि (अंतिम संस्कार), श्राद्ध, कन्यादान आदि, जो प्रत्यर्थी सं. 1 को कर्ता घोषित करने के दावे पर न्यायनिर्णयन करते समय विचार किए जाने वाले अनिवार्य प्रसंग हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी विवेचना नहीं

की कि मासिक धर्म के दौरान एक महिला द्वारा धार्मिक और अन्य पवित्र गतिविधियाँ नहीं की जा सकती। वास्तव में, यह अपीलार्थी ही है जिसने प्रत्यर्थी सं. 1 के पिता का अंतिम संस्कार किया क्योंकि उनका कोई पुत्र नहीं था। एक तरह से, अपीलार्थी लंबे समय से कर्ता की भूमिका निभा रहा है जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 ने कभी भी इस तरह की कोई जिम्मेदारी नहीं निभाई।

30. अपीलार्थी के विद्वान् अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि यह विधि की स्थापित स्थिति है कि पिता की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के मामले में, पत्नी, जो नाबालिग पुत्रों की मां है, तब तक एचयूएफ की प्रबंधक रह सकती है जब तक कि उसके पुत्र वयस्क नहीं हो जाते। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि माँ एचयूएफ की कर्ता बन जाती है। इस तर्क के विस्तार में, यह प्रस्तुत किया गया है कि एक विवाहित महिला से उसके वैवाहिक घर में एचयूएफ में प्रबंधकीय भूमिका निभाने की अपेक्षा की जा सकती है। हालाँकि, अपने पिता के परिवार में कर्ता बनने का कोई भी अधिकार उसके वैवाहिक घर में मौजूद अधिकारों के साथ टकराएगा, जिसके परिणामस्वरूप रुचियों का टकराव होगा और उसकी वफादारी कहाँ होनी चाहिए, इस पर नैतिक दुविधा होगी।

31. यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश यह विचार करने में विफल रहे कि प्रत्यर्थी सं. 1 को "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का कर्ता घोषित करने से, एचयूएफ संपत्तियों और व्यवसाय का वास्तविक और विधिक

नियंत्रण प्रत्यर्थी सं. 1 के पति के हाथों में रहेगा और इसके परिणामस्वरूप आयकर के आकलन में जटिलताएं उत्पन्न होंगी।

32. विधि में पारंपरिक रूप से कर्ता को परिवार का सबसे वरिष्ठ पुरुष सदस्य माना गया है, क्योंकि ऐसा पुरुष परिवार के सदस्यों पर सम्मान और अधिकार रखता है। चूंकि प्रत्यर्थी सं. 1 में ऐसे गुण नहीं हैं और वह परिवार का अभिन्न अंग नहीं रही है, इसलिए वह एचयूएफ का कर्ता होने का दावा नहीं कर सकती। इस प्रकार, केवल अपीलार्थी, सबसे वरिष्ठ पुरुष सहदायिक होने के नाते, एचयूएफ को कुशलता से चलाने और प्रबंधित करने के औहदे पर होगा।

33. अपीलार्थी ने आगे तर्क दिया कि घोषणा हेतु वाद प्रत्यर्थी सं. 1/श्रीमती सुजाता शर्मा द्वारा अपीलार्थी द्वारा उठाई गई आपत्तियों के प्रतिशोध में दायर किया गया था, जब सुजाता ने स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता द्वारा बनाए गए चैरिटेबल ट्रस्ट को उक्त संपत्ति का कम मूल्य बता करके बेचने का प्रयास किया था। यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 का वाद दायर करने का उद्देश्य संपत्ति पर नियंत्रण हासिल करना और उसे बेचकर खुद को अनुचित तरीके से मालामाल करना था।

34. अपीलार्थी ने आगे प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 1956 की धारा 6 में 2005 में संशोधन के बाद श्री आर.एन. गुप्ता की मृत्यु के परिणामस्वरूप

एचयूएफ का विभाजन माना गया और इस प्रकार, प्रत्यर्थी संख्या 1 सहदायिक होने का दावा नहीं कर सकती।

35. **अपीलार्थी ने अपने लिखित प्रस्तुतीकरण** में आगे कहा है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पिता का निधन 18.02.1984 को हो गया था। 2005 का संशोधन, भावी प्रकृति का होने के कारण, प्रत्यर्थी सं. 1 पर तभी लागू होगा जब संशोधन लागू होने के समय उसके पिता जीवित हों। मृतक सहदायिक का हिस्सा, जिस पर उसके कानूनी उत्तराधिकारी हकदार होते हैं, उसकी मृत्यु के बाद यह सुनिश्चित हो जाता है, जैसा कि *भारतीय स्टेट बैंक बनाम घमंडी राम*, एआईआर 1969 1330 में निर्णय दिया गया है। इस प्रकार, सुश्री मीरा साहनी और सुश्री गार्गी गुप्ता के अलावा कोई भी पुत्री सहदायिक होने की हकदार नहीं होगी। इस रुख के समर्थन में *प्रकाश एवं अन्य बनाम फुलवती (2016) 2 एससीसी 36 और दानम्मा @ सुमन सुपुर एवं अन्य बनाम अमर एवं अन्य,* 2018 एससीसी ऑनलाइन एससी 63 पर भरोसा जताया गया। यह तर्क दिया गया है कि *दानम्मा @ सुमन सुपुर* (पूर्वोक्त) के निर्णय में जानबूझकर कर्ता के पवित्र औहदे को सामाजिक असमानताओं के दायरे से बाहर रखा गया, जिसे 2005 के संशोधन अधिनियम के माध्यम से संबोधित करने की मांग की गई थी।

36. यह बताया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 9 द्वारा दायर विभाजन के लिए वाद में, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 1/श्रीमती सुजाता शर्मा, जो प्रतिवादी सं. 4 हैं, ने

आश्चर्यजनक रूप से अपने लिखित बयान में यह मत रखा है कि एचयूएफ संपत्ति का पहले ही विभाजन हो चुका है। ऐसी स्थिति में, प्रत्यर्थी सं. 1, *डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ* की सहदायिक होने का दावा नहीं कर सकती।

37. इसके बाद, *विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा* (2020) 9 एससीसी 1 के संदर्भ में, अपीलार्थी ने स्वीकार किया कि वह प्रत्यर्थी सं. 1 के सहदायिक अधिकार को चुनौती नहीं देना चाहता है। हालाँकि, चूंकि उक्त निर्णय में उसके कर्ता बनने के अधिकार का उल्लेख नहीं है, इस कारण प्रत्यर्थी सं. 1 कर्ता की उपाधि का दावा करने के लिए इसका सहारा नहीं ले सकती है। यह दोहराया जाता है कि *विनीता शर्मा* (पूर्वोक्त) का मामला प्रत्यर्थी सं. 1 के मामले पर लागू नहीं होता है क्योंकि उन्होंने *मीरा साहनी और अन्य* (पूर्वोक्त) द्वारा दायर वाद में दायर अपने लिखित बयान में यह रुख अपनाया है कि एचयूएफ संपत्ति का विभाजन 2006 के संशोधन अधिनियम के प्रभावी होने से पहले ही हो चुका है।

38. **प्रत्यर्थी सं. 1/सुजाता शर्मा ने अपने लिखित तर्क** में प्रस्तुत किया कि 17 में से 10 प्रत्यर्थीगण ने प्रत्यर्थी सं. 1 को डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ की कर्ता बनने के लिए अनापत्ति के अपने शपथपत्र दिए हैं। आगे कहा गया है कि अधिनियम, 1956 की धारा 6 विवाहित, अविवाहित, विधवा, शिक्षित या अशिक्षित पुत्री के बीच कोई भेद नहीं करती है, क्योंकि सहदायिक की पुत्री होना ही विधि के तहत एकमात्र योग्यता है। इसके अलावा, *कन्यादान, सतफेरे,*

पाणिग्रहण जैसे समारोहों के आयोजन से किसी महिला की एक पुत्री होने की पहचान खत्म नहीं होती है। विवाह के बाद प्रत्यर्थी सं. 1 के गोत्र में परिवर्तन पर अपीलार्थी के तर्क के जवाब में, यह जोरदार ढंग से तर्क दिया गया कि विवाह से किसी व्यक्ति का खून नहीं बदलता है और वह अभी भी अपने पैतृक परिवार की पुत्री ही बनी हुई है। यह तर्क देने के लिए कि एक पुत्री एक सहदायिक है जिसके पास पुत्र के समान अधिकार हैं विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा (पूर्वोक्त) और गंडूरी कोटेश्वर राममा बनाम चकरी यानाडी एवं अन्य (2011) 9 एससीसी 788 पर भरोसा जताया गया। इसके अलावा, कर्ता की भूमिका परिवार के सबसे वरिष्ठ सदस्य को प्रदान की जाती है जैसा कि *त्रिभुवन दास तंबोली बनाम गुजरात राजस्व अधिकरण एवं अन्य* एआईआर 1991 एससी 1538 में अभिनिर्धारित गया है। यह देखते हुए कि केवल एक सहदायिक ही एचयूएफ का कर्ता बन सकता है, जैसा कि *आयकर आयुक्त बनाम सेठ गोविंद राम शुगर मिल्स,* एआईआर 1966 एससी 24 में अभिनिर्धारित किया गया है, एक महिला कर्ता बन सकती है यदि वह सबसे वरिष्ठ सहदायिक है।

39. अपीलार्थी द्वारा लम्बे समय से कर्ता के रूप में अपने दायित्वों का निर्वहन करने के दावे के प्रत्युत्तर में यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1, एचयूएफ संपत्ति के संबंध में वर्ष 2006 से रक्षा संपदा अधिकारी के साथ संपर्क कर रही है तथा उसने दिल्ली विकास प्राधिकरण की अधिसूचना पर आपत्ति भी दर्ज

कराई है, गृहकर का भुगतान किया है, पैन कार्ड जारी करवाया है तथा बैंक खाता पुनः चालू करवाया है।

40. **प्रत्यर्थी सं. 9 और 10 ने अपने लिखित प्रस्तुतीकरण में** तर्क दिया कि *प्रकाश बनाम फूलवती* (पूर्वोक्त) के निर्णय के मद्देनजर, प्रत्यर्थी संख्या 1 सहदायिक नहीं है क्योंकि उसके पिता की मृत्यु 17.02.1983 को हो गई थी, अर्थात हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के लागू होने से पहले। इस प्रकार प्रत्यर्थी संख्या 9 "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" की सबसे वरिष्ठ कानूनी रूप से पात्र कर्ता है क्योंकि उसके पिता स्वर्गीय श्री आर.एन. गुप्ता 09.09.2005 को जीवित थे और तब कर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। इस प्रकार, विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय *प्रकाशी* (पूर्वोक्त) के निर्णय को लागू न करने के कारण अनुचित है। इसके अलावा, *दानम्मा @ सुमन सुपुर* (पूर्वोक्त) में दिया गया निर्णय *प्रकाश बनाम फूलवती* (पूर्वोक्त) के निष्कर्ष की पुष्टि करता है और उसे दोहराता है।

41. इसके अलावा, *गंगा सरन बनाम सिविल न्यायाधीश, हापुड़, गाजियाबाद* एआईआर 1991 ऑल 114 (एफबी); *इंडो स्विस बनाम उमराव* एआईआर 1981 पी एंड एच 213 (एफबी); *कुलभूषण कुमार बनाम पंजाब राज्य* एआईआर 1984 पी एंड एच 55 (एफबी); *विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी बनाम नगर निगम* एआईआर 1888 बॉम9 (एफबी) और *गोपा मनीष वोरा बनाम*

यूओआईआईएलआर (2009) दिल्ली 61 (डीबी) के निर्णयों पर भरोसा जताया गया।

42. यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार जब एक पुत्री को पुत्र के समान सहदायिक बना दिया जाता है, तो उसके अधिकार पर कोई भी प्रतिबंध या बंधन लागू नहीं होता है। विधि द्वारा महिलाओं को समान अधिकार दिए जाने के बाद भी, महिलाओं के साथ सदियों से हो रहा अन्याय जारी नहीं रह सकता। समान अधिकार एक पुत्री के साथ समान व्यवहार का प्रवेश द्वार बनेंगे और उसके जन्म पर परिवार में उसके सम्मान और गरिमा को सुदृढ़ करेंगे। इस प्रकार यह दावा किया गया कि कानूनी रूप से योग्य सबसे वरिष्ठ सहदायिक प्रत्यर्थी सं. 9/मीरा साहनी है।

43. **प्रत्यर्थी सं. 12 और 13 ने अपनी लिखित प्रस्तुतियों में प्रत्यर्थी सं. 1** को अपना समर्थन दिया है। इसमें कहा गया है कि विवाह के बाद भी पुत्री सहदायिक होने के साथ-साथ संयुक्त हिन्दू परिवार की सदस्य भी बनी रहती है। इसका तात्पर्य यह है कि एक पुत्री विवाह के बाद दो एचयूएफ की सदस्य हो सकती है। *विनीता शर्मा* (पूर्वोक्त) पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम, 1956 की धारा 6 के तहत सहदायिक अधिकार 2005 में संशोधन से पहले या बाद में पैदा हुई पुत्रियों को उसी तरह उपलब्ध है जैसे समान अधिकारों और दायित्वों के साथ एक पुत्र को। इसके अलावा, उन्होंने

प्रत्यर्थी सं.1 के इस तर्क का समर्थन किया कि यदि पुत्री सबसे वरिष्ठ सहदायिक है तो वह कर्ता बन सकती है।

44. इस न्यायालय द्वारा दिनांक 15.01.2021 के आदेश द्वारा सुश्री आकांक्षा कौल को न्याय-मित्र नियुक्त किया गया था, जिन्होंने इस न्यायालय को दो प्रश्नों पर सहायता प्रदान की है, अर्थात्: -

> *क. क्या एक विवाहित पुत्री एक हिंदू अविभाजित परिवार (हि.अ.परि) की कर्ता हो सकती है?*
>
> *ख. क्या हिंदू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम, 2005 से अधिनियम, 1956 की धारा 6 भूतलक्षी है?*

45. उन्होंने प्रस्तुत किया कि प्रश्न ख का उत्तर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा *विनीता शर्मा* (पूर्वोक्त) में पहले ही सकारात्मक रूप में दिया जा चुका है, जिसमें यह माना गया है कि 2005 में संशोधित धारा 6 भूतलक्षी नहीं है, क्योंकि संपन्न लेनदेन या निहित अधिकारों को फिर से खोला या प्रभावित नहीं किया जा सकता है। यह प्रावधान पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू होता है, क्योंकि यह जन्म की पूर्ववर्ती घटना के आधार पर अधिकार प्रदान करता है। एचयूएफ का कर्ता बनने के लिए एकमात्र योग्यता यह है कि संबंधित व्यक्ति सहदायिक होना चाहिए। कर्ता के रूप में नियुक्त व्यक्ति की भूमिका का वर्णन करने के लिए *त्रिभुवन दास हरिभाई तम्बोली* (पूर्वोक्त) पर भरोसा जताया गया।

46. विद्वान न्यायमित्र सुश्री आकांक्षा कौल ने आगे प्रस्तुत किया कि पहले केवल पुरुष ही एचयूएफ का सहदायिक बन सकता था, क्योंकि सहदायिक अधिकार केवल पुरुषों को ही प्राप्त थे। इस प्रकार, किसी पुत्री को कर्ता बनने से वंचित करने का एकमात्र आधार अब नहीं रह गया है। इसलिए, यदि पुत्री सबसे वरिष्ठ सहदायिक है, तो उसे कर्ता बनना चाहिए।

47. इसके अलावा, विवाह होना किसी पुत्री के सहदायिक होने पर कोई प्रभाव नहीं डालता क्योंकि यह संशोधन विवाहित और अविवाहित पुत्री के बीच अंतर नहीं करता है। अधिनियम, 1956 की धारा 6 में संशोधन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पुत्री भी पुत्र के समान ही सहदायिक बनती है। जब विवाह के बाद एक पुत्र के सहदायिक बनने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, तो वही लाभ पुत्री को भी दिया जाना चाहिए। वास्तव में, अब यह नहीं कहा जा सकता है कि विवाह के बाद पुत्री अपने पिता के परिवार की सदस्य नहीं रह जाती है जैसा कि *खुशी राम एवं अन्य बनाम नवल सिंह एवं अन्य* 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 128 में देखा गया है। शीर्ष न्यायालय ने *विनीता शर्मा* (पूर्वोक्त) के ऐतिहासिक निर्णय में भी कहा है कि 2005 के संशोधन अधिनियम का उद्देश्य कभी भी विवाहित और अविवाहित महिला के बीच भेदभाव करना नहीं हो सकता है।

48. भारत के विधि आयोग की 174वीं रिपोर्ट "*महिलाओं के समुचित/संपत्ति अधिकारः हिंदू विधि के अंतर्गत प्रस्तावित सुधार*" में की गई सिफारिशों के आधार पर विधानमंडल ने 2005 के संशोधन में एक विवाहित और एक अविवाहित पुत्री के बीच राज्य संशोधन में किए गए अंतर को शामिल नहीं किया है। इस प्रकार, सहदायिक की सभी पुत्रियां सहदायिक बनने की हकदार हैं, जिससे वे कर्ता बनने की भी हकदार हो जाती हैं।

49. विद्वान *न्यायमित्र* सुश्री आकांक्षा कौल ने अपने मौखिक तर्कों में उपरोक्त प्रतिविरोधो को दोहराया है।

50. **सभी पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्तागण की प्रस्तुतियां सुनी गईं तथा लिखित प्रस्तुतियों और अभिलेख का अवलोकन किया गया।**

51. पक्षकारगण द्वारा प्रस्तुत तथ्यों और प्रस्तुतियों के आधार पर, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी पुत्री के सहदायिक हित के विरोध में नहीं है; हालाँकि, वह सहदायिक हित के साथ-साथ प्रत्यर्थी सं. 1 के दूसरे वाद में लिखित बयान पर भरोसा करके "डीआर गुप्ता एंड संस एचयूएफ" की कर्ता बनने के उसके अधिकार पर हमला करता है। प्रत्यर्थी संख्या 9 और 10 अपने इस रुख पर कायम हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 1 सहदायिक नहीं है, क्योंकि सुश्री सुजाता शर्मा के पिता की मृत्यु संशोधन अधिनियम, 2005 के प्रभावी होने से पहले हो गई थी।

विवाद का मुख्य मुद्दा, "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" की कर्ता बनने का उनका दावा है।

52. अपीलार्थी और प्रत्यर्थीगण के अधिकारों को अंकित करने से पहले, अधिनियम, 1956 की धारा 6 में 2005 के संशोधन के निहितार्थ पर विद्वान एकल न्यायाधीश के निष्कर्षों की जांच करना अनिवार्य है।

> **<u>मुद्दा संख्या 8:</u>** —
> ***2005 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन का क्या प्रभाव है और क्या इसने संयुक्त परिवार की अवधारणा या सहदायिकी की विधि में इसकी संपत्तियों में कोई बदलाव किया है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)"***

53. अपीलार्थी ने तर्क दिया है कि अधिनियम, 1956 की धारा 6 केवल संपत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में अधिकारों को परिभाषित करती है, न कि *कर्ता* द्वारा उसके प्रबंधन को, जो कि हिंदू धर्म के रीति-रिवाजों और प्राचीन ग्रंथों की व्याख्या द्वारा शासित होता है। यह तर्क दिया गया है कि सहदायिक होने के लिए एक महिला के अधिकारों का वैधानिक विस्तार और सहदायिक संपत्ति में हित का न्यागमन अधिनियम, 1956 की धारा 6 के तहत किया गया है और यह कर्ताधर्म तक विस्तारित नहीं है। इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश को अधिनियम, 1956 के आशय और उद्देश्य से आगे नहीं बढ़ना चाहिए था और अधिनियम, 1956 की धारा 6 में संशोधन करके यह निष्कर्ष निकालना चाहिए

था कि एक महिला को सहदायिक के रूप में मान्यता देने में कर्ता होने का अधिकार भी शामिल है।

54. अपीलार्थी द्वारा उठाए गए विवाद के निर्धारण के लिए, पारंपरिक हिंदू विधि के तहत संयुक्त हिंदू परिवार और एचयूएफ की अवधारणा का संदर्भ लेना उचित हो जाता है।

55. एक **संयुक्त हिंदू परिवार** में एक ही पुरुष पूर्वज के वंशज पुरुष सदस्यों के साथ उनकी माताएं, पत्नियां या विधवाएं और अविवाहित बेटियां शामिल होती हैं। वे सपिंडत्व या पारिवारिक रिश्ते के मूल सिद्धांत से एक साथ बंधे हैं, जो संस्था की अनिवार्य विशेषता है। परिवार के सदस्यों को आपस में जोड़ने वाली डोर संपत्ति नहीं है, बल्कि उनका एक-दूसरे के साथ रिश्ता है, जैसा कि *आयकर आयुक्त बनाम लक्ष्मीनारायण* (1935) 59 बॉम 618 में बताया गया है।

56. राघवाचार्य के हिंदू विधि, 5वें संस्करण, पृष्ठ 838 में, "सहदायिक" की अवधारणा को परिभाषित किया गया था जो निम्नानुसार है: -

> *सहदायिकी एक संयुक्त परिवार की तुलना में एक संकीर्ण निकाय है और इसमें केवल वे व्यक्ति शामिल होते हैं जो जन्म से धारक की संपत्ति में कुछ समय के लिए हित रखते हैं और जो जब चाहें विभाजन कर सकते हैं। यह एक ही पूर्वज से शुरू होता है और इसमें संयुक्त संपत्ति का धारक तथा उसके पुरुष वंश के केवल वे पुरुष शामिल होते हैं जो उससे तीन पीढ़ी से अधिक दूर के नहीं*

हैं। सहदायिकता इतनी सीमित होने का कारण हिंदू धर्म के सिद्धांत में पाया जाता है कि केवल तीन पीढ़ी तक के पुरुष वंशज ही किसी पूर्वज को आध्यात्मिक सेवकाई दे सकते हैं। केवल पुरुष ही सहदायिक हो सकते हैं।

57. उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह देखा जा सकता है कि एक "संयुक्त हिंदू परिवार" में एक ही पुरुष पूर्वज के वंशज पुरुष सदस्य शामिल होते हैं और इसमें उनकी अविवाहित बेटियां, पत्नियां, माताएं और विधवाएं शामिल होती हैं। "सहदायिक" एक संकीर्ण निकाय है जो संयुक्त हिंदू परिवार के भीतर एक उपसमूह है जहां संपत्ति में हिस्सेदारी जन्म से पैदा होती है। यद्यपि संयुक्त परिवार की स्थिति जन्म का परिणाम होती है, संयुक्त संपत्ति का कब्जा केवल एक परिशिष्ट है और ऐसे परिवार के गठन के लिए पूर्वापेक्षा नहीं है जैसा कि *हरिदास बनाम देवकी बाई*, 1926 एससीसी ऑनलाइन बॉम 76 में कहा गया है। दूसरी ओर, एक "सहदायिक" तभी बनाया जाता है जब संयुक्त या सहदायिक संपत्ति होती है।

<u>प्रबंधक का स्थान:-</u>

58. इस प्रकार, जिस प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या एक महिला को सहदायिक के रूप में मान्यता देने से सहदायिक संपत्ति का प्रबंधन संभालने के लिए कर्ता बनना आवश्यक हो जाता है।

59. **राघवाचार्य के हिंदू विधि** में, संयुक्त हिंदू परिवार के "प्रबंधक" को परिवार के वरिष्ठ सदस्य के रूप में वर्णित किया गया है, जो संपत्तियों का प्रबंधन करने का हकदार है और उसकी अनुपस्थिति में, परिवार का अगला सबसे वरिष्ठ पुरुष सदस्य इसका प्रबंधक होता है, बशर्ते कि वह बीमारी या अन्य पर्याप्त कारण से कार्य करने में असमर्थ न हो। पृष्ठ 295 पर, संयुक्त हिंदू परिवार के "प्रबंधक" के स्थान को समझाया गया है जो इस प्रकार है: -

-

> *276. **प्रबंधक का स्थान** – एक हिंदू परिवार में कर्ता या प्रबंधक अन्य सदस्यों से बेहतर स्थान पर होता है, जहां तक वह संपत्ति या व्यवसाय का प्रबंधन करता है या अन्य सदस्यों की ओर से परिवार के हितों की रक्षा करता है। संयुक्त परिवार की संपत्ति का प्रबंधन किसी व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त होता है और प्रबंधक के रूप में उसके स्थान को उसके सहदायिकों की सहमति के आधार पर नहीं माना जाता है।"*

60. **बी एम गांधी के हिंदू विधि में,** "प्रबंधन" या "कर्ताधर्म" की अवधारणा को समान रूप से समझाया गया है जो इस प्रकार है: -

19. प्रबंधक (कर्ता):-

(a) कौन है/कौन हो सकता है। *हिंदू संयुक्त परिवार अधीनता के सिद्धांत से संचालित होता है।* ***इसके मामलों का प्रबंधन एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है, जिसे कर्ता या प्रबंधक कहा जाता है।"***

61. *गनसावंत बालसावंत बनाम नारायण धोंड सावंत,* (1883) आईएलआर 7 बॉम 467 में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा यह समझाया गया था कि एक हिंदू परिवार को एक निगम के रूप में माना जा सकता है जिसके हित आवश्यक रूप से प्रबंधक के पास संतुलित हैं, यह अनुमान लगाया जाता है कि प्रबंधक परिवार के लिए कार्य कर रहा है, जब तक कि इसके विपरीत न दर्शाया जाए। जब तक कर्ता या प्रबंधक अपना अधिकार त्याग न दे अथवा कोई असाधारण, विषम या बाध्यकारी परिस्थिति न हो, तब तक परिवार में कनिष्ठ सदस्य इस अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते। भले ही कर्ता पागल हो, कनिष्ठ व्यक्ति पागलपन अधिनियम, 1912 के तहत न्यायालय का आदेश प्राप्त किए बिना संपत्ति को अलग-थलक नहीं कर सकते।

62. *त्रिभुवनदास हरिभाई तंबोली* (पूर्वोक्त) मामले में शीर्ष न्यायालय ने कहा कि **संयुक्त परिवार की संपत्ति का प्रबंधन जन्म से ही किसी व्यक्ति को मिल जाता है और वरिष्ठता के आधार पर इसका विनियमन होता है। वह "परिवार का मुखिया" है।** आगे यह भी कहा गया कि पिता सामान्यतः अपने परिवार का प्रबंधक होता है जिसमें वह स्वयं, उसके वंशज और अन्य सम्बन्धी शामिल होते हैं। पिता की मृत्यु के बाद आमतौर पर उसका बड़ा पुत्र प्रबंधक बन जाता है। यह संभव है कि कोई अधिक योग्य पुत्र प्रबंधक बन जाए, अथवा यह भी संभव है कि वरिष्ठ सदस्य प्रबंधन का अपना अधिकार छोड़ दे और स्वास्थ्य कारणों से वरिष्ठ सदस्य के अक्षम हो जाने पर कोई कनिष्ठ सदस्य उसके स्थान पर कार्य कर सकता है। इस प्रकार, **प्रबंधक बनने का अधिकार इस मौलिक तथ्य पर निर्भर करता है कि जिस व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त होता है, वह संयुक्त परिवार का सहदायिक था।** परिणामस्वरूप, पारंपरिक हिंदू विधि के तहत, कोई भी महिला सदस्य (जैसे, विधवा) संयुक्त परिवार की प्रबंधक या कर्ता नहीं हो सकती।

63. उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि **संयुक्त हिंदू परिवार में जन्म, उम्र के अनुसार वरिष्ठता और सहदायिक होने का दर्जा कर्ता बनने के लिए आवश्यक योग्यताएं हैं।** पारंपरिक विधि में कहीं भी किसी महिला को

प्रबंधक बनने से प्रतिबंधित नहीं किया गया था, लेकिन "सबसे वरिष्ठ पुरुष" होने की अनिवार्यता इस तथ्य का आवश्यक परिणाम थी कि संयुक्त हिंदू परिवार के केवल पुरुष सदस्यों को, जो सहदायिकता की पीढ़ी के भीतर पैदा हुए थे, सहदायिक का दर्जा दिया गया था।

64. इस परिसीमा का निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 6 में संशोधन द्वारा किया गया है, जो अब महिला को पुत्र (पुरुष) के बराबर अधिकार देते हुए सहदायिक के समान दर्जा प्रदान करता है। इसलिए, सहदायिक का दर्जा प्राप्त करने के बाद, प्रत्यर्थी सं. 1 कर्ता का दर्जा प्राप्त करने की हकदार होनी चाहिए।

65. दूसरी ओर, अपीलार्थी ने तर्क दिया है कि **संशोधन अधिनियम, 1956 के पीछे विधायी उद्देश्य, जैसा कि इसकी उद्देशिका और धारा 6 के शीर्षक (जैसा कि 2005 में संशोधित किया गया)** में परिलक्षित है, केवल संपत्ति के उत्तराधिकार पर विधि को संहिताबद्ध करना है और यह पारंपरिक हिंदू विधि को नहीं बदलता है या एचयूएफ का कर्ता बनने के लिए पुरुष सहदायिक होने की आवश्यक योग्यता को संशोधित नहीं करता है।

66. अपीलार्थी का यह तर्क इस सवाल को जन्म देता है कि क्या प्रावधान के शीर्षक या अधिनियम, 1956 की उद्देशिका का उपयोग धारा के मुख्य भाग के

भीतर प्रयुक्त व्यक्त शब्दों के दायरे को प्रतिबंधित करने के लिए किया जा सकता है।

<u>अधिनियम, 1956 की धारा 6 का शीर्षक:</u>

67. अधिनियम, 1956 की धारा 6 का शीर्षक "सहदायिक संपत्ति में हित का न्यागमन" है और धारा का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है: -

— (1) हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से ही मिताक्षरा विधि द्वारा शासित किसी संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब में किसी सहदायिक की पुत्री,

(क) जन्म से ही अपने स्वयं के अधिकार से उसी रीति से सहदायिक बन जाएगी जैसे पुत्र होता है;

(ख) सहदायिकी संपत्ति में उसे वही अधिकार प्राप्त होंगे जो उसे तब प्राप्त हुए होते जब वह पुत्र होती;

(ग) उक्त सहदायिकी संपत्ति के संबंध में पुत्र के समान ही दायित्वों के अधीन होगी, और हिन्दू मिताक्षरा सहदायिक के प्रति किसी निर्देश से यह समझा जाएगा कि उसमें सहदायिक की पुत्री के प्रति कोई निर्देश सम्मलित है:

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्ययन या अन्यसंक्रामण को, जिसके अंतर्गत संपत्ति का ऐसा कोई विभाजन या वसीयती व्यय भी है, जो 20 दिसम्बर, 2004 से पूर्व किया गया था, प्रभावित या अविधिमान्य नहीं करेगी।

68. *रायचूरमाथम प्रभाकर बनाम रावतमल दुगर* (2004) 4 एससीसी 766 के मामले में, शीर्ष न्यायालय ने कहा कि किसी प्रावधान का शीर्षक या शीर्षक कानून के निर्माण में एक सीमित भूमिका निभाता है। प्रावधान की स्पष्ट भाषा और शीर्षक या शीर्षक के अर्थ के बीच विवाद की स्थिति में, जो व्याख्या उसके अंतर्गत प्रावधान की भाषा से स्पष्ट और स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, वही मान्य होगी।

69. इस प्रकार, अधिनियम, 1956 की धारा 6 का शीर्षक प्रावधान के तहत प्रदत्त स्पष्ट वैधानिक अधिकार को प्रतिबंधित करने का आधार नहीं बन सकता है।

अधिनियम, 1956 की उद्देशिका :-

70. उद्देशिका में अधिनियम के प्रमुख उद्देश्यों की सूची दी जाती है जो व्याख्या में आंतरिक सहायता प्रदान करती है। *अधिनियम, 1956 की उद्देशिका में कहा गया है, "हिंदुओं में निर्वसीयत उत्तराधिकार से संबंधित कानून में संशोधन और संहिताबद्ध करने के लिए एक अधिनियम।"*

71. 1956 की शुरुआत में, हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने *प्रिंस अर्नेस्ट ऑफ हनोवर बनाम अटॉर्नी जनरल* (1957) 1 ऑल ई.आर. 49 में कहा कि "जब कोई उद्देशिका होती है तो सामान्यतः उसके वर्णन में ही निवारण किए जाने वाले नुक्सान और अधिनियम के दायरे का वर्णन होता है।" इसलिए, अधिनियमित प्रावधानों को समझने में सहायता के रूप में इसका अवलंब लेना स्पष्ट रूप से स्वीकार्य है। **तथापि, अधिनियम की किसी धारा के अर्थान्वयन में सहायक के रूप में उद्देशिका का उतना महत्व नहीं है, जितना कि अधिनियम में अन्यत्र या यहां तक कि संबंधित अधिनियमों में पाए जाने वाले अन्य प्रासंगिक अधिनियमन शब्दों का है। उद्देशिका और अधिनियमन के बीच कोई सटीक सामंजस्य नहीं हो सकता है, और अधिनियमन इससे आगे बढ़ सकता है, या यह उद्देशिका से एकत्र किए गए संकेतों से कम हो सकता है। पुनः, उद्देशिका उन प्रावधानों की व्याख्या करने में बहुत अधिक या कोई सहायता नहीं कर सकती है जो अधिनियम के सामान्य उद्देश्य के संचालन से योग्यताएं या अपवाद शामिल करते हैं। यह केवल तभी संभव है जब यह अपेक्षाकृत अस्पष्ट या अनिश्चित अधिनियमित शब्दों की तुलना में स्पष्ट और निश्चित अर्थ व्यक्त करता है, तभी उद्देशिका वैध रूप से मान्य हो सकती है।**

72. *प्रिंस अर्नेस्ट ऑफ हनोवर (पूर्वोक्त) में आगे यह भी कहा गया कि न्यायालय लिस पर निर्णय देने के व्यावहारिक कार्य से संबंधित होते हैं, और जब वादी किसी अधिनियमन का एक अर्थ प्रस्तुत करता है और प्रतिवादी दूसरा अर्थ प्रस्तुत करता है, किसी भी कठिनाई के मामले में, जिसे मैंने उद्देशिका सहित कानूनी और तथ्यात्मक संदर्भ कहा है, उसके बारे में सूचित करने के बाद, इस ज्ञान के प्रकाश में विचार करना कि क्या अधिनियमित शब्द दोनों प्रतिद्वंद्वी अर्थान्वयन को स्वीकार करते हैं, यह न्यायालय का काम है। यदि वे केवल एक ही अर्थान्वयन को स्वीकार करते हैं, तो वह अर्थान्वयन प्रभावी होगा, भले ही वह उद्देशिका के साथ असंगत हो, लेकिन यदि अधिनियमित शब्द पक्षों द्वारा प्रस्तावित किसी भी अर्थान्वयन के लिए सक्षम हैं, तो उद्देशिका के अनुकूल अर्थान्वयन को प्रस्तुत किया जा सकता है।*

73. *आर. वेंकटस्वामी नायडू बनाम नरसिम्हा नारायणदास* (1966) 1 एससीआर 110 में, यह देखा गया कि हालांकि उद्देशिका कानून की व्याख्या करने की कुंजी है, लेकिन यह कानून के अधिनियमित भाग को प्रतिबंधित नहीं कर सकती है जब यह स्पष्ट, व्यापक और अस्पष्ट हो। यह स्वीकार करते हुए कि विधान का उद्देश्य उद्देशिका में दर्शाया गया है, यह स्पष्ट किया गया कि

किसी कानून के अधिनियमन भाग में उपचार उद्देशिका में बताए गए बुराई के उपचार से भी परे हो सकता है।

74. कोई भी चीज विधानमंडल को पुत्री को पुत्र के समान सहदायिक अधिकार प्रदान करने से नहीं रोकती है, जो अधिनियम, 1956 की उद्देशिका के शब्दों से परे है। बल्कि अधिनियम, 1956 की धारा 6 के शब्दों में जरा भी अस्पष्टता नहीं है *क्योंकि उनमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक सहदायिक की पुत्री जन्म से ही पुत्र की तरह ही अपने अधिकार में सहदायिक बन जाएगी और हिंदू मिताक्षरा सहदायिक के किसी भी संदर्भ में सहदायिक की पुत्री के संदर्भ को सम्मिलित माना जाएगा।* संशोधन अधिनियम, 2005 की धारा 6 की स्पष्ट भाषा यह स्पष्ट रूप से बताती है कि यद्यपि उद्देशिका में संदर्भ उत्तराधिकार का हो सकता है, लेकिन "समान" अधिकार प्रदान करने में अन्य सभी अधिकार शामिल होंगे जो एक सहदायिक के पास होते हैं, जिसमें कर्ता होने का अधिकार भी शामिल है।

<u>अधिनियम के उद्देश्यों एवं कारणों का विवरण (2005 का 39):-</u>

75. इसके अलावा, **अधिनियम की धारा 6 (39, 2005) के उद्देश्यों और कारणों के विवरण** में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह प्रावधान सहदायिक स्वामित्व में भेदभाव को दूर करके महिलाओं को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया है। उद्देश्यों का विवरण इस प्रकार है: -

"2. अधिनियम की धारा 6 सहदायिक संपत्ति में एक हिंदू पुरुष के हित के न्यागमन से संबंधित है और सहदायिक के सदस्यों के बीच जीवित रहने के आधार पर न्यागमन के नियम को मान्यता देती है। महिलाओं को इसमें शामिल किए बिना मिताक्षरा सहदायिक संपत्ति को अपने पास रखने का मतलब है कि महिलाएं पैतृक संपत्ति में अपने पुरुष समकक्षों की तरह उत्तराधिकार प्राप्त नहीं कर सकतीं। ***इस विधि ने पुत्री को सहदायिक स्वामित्व में भाग लेने से बाहर करके न केवल लिंग के आधार पर उसके साथ भेदभाव को बढ़ावा दिया है, बल्कि महिलाओं को सामाजिक न्याय प्रदान करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संविधान द्वारा गारंटीकृत समानता के उसके मौलिक अधिकार का उत्पीड़न और हनन भी किया है,*** *आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्य ने हिंदू मिताक्षरा सहदायिक संपत्ति में पुत्रियों को समान अधिकार देने के लिए इस विधि में आवश्यक बदलाव किए हैं। केरल विधानमंडल ने केरल संयुक्त हिंदू परिवार प्रणाली (निरसन) अधिनियम, 1975 अधिनियमित किया है।*

76. इस प्रकार, हम देखते हैं कि अधिनियम, 1956 की धारा 6 स्पष्ट और सुस्पष्ट शब्दों में पुत्री के साथ-साथ पुत्र को भी सहदायिक के रूप में समान अधिकार प्रदान करती है। इसलिए, पुत्र और पुत्री को अलग-अलग अधिकार

प्रदान करने में सहदायिक की स्थिति और इसकी आवश्यक प्रसंगति का विरोधाभास, दोनों को समान अधिकार देते हुए संबोधित किया गया है।

<u>क्या पुत्री को सहदायिक के रूप में मान्यता देना उसे अनिवार्यतः कर्ता होने का अधिकार देता है: -</u>

77. अपीलार्थी के सभी तर्क मूलतः इस आधार पर आधारित हैं कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 को हिन्दुओं में संपत्ति के निर्वसीयत उत्तराधिकार से संबंधित विधि को संशोधित करने और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियमित किया गया था और यह किसी भी तरह से *कर्ता* और उसके दायित्वों, जो अधिनियम, 1956 की धारा 4 के आधार पर विशिष्ट रूप से संरक्षित और परिरक्षित हैं, के संबंध में प्रथागत हिन्दू विधि के साथ छेड़छाड़ नहीं करता है।

78. सहदायिकता की अवधारणा एक परिवार द्वारा रखी गई संपत्तियों के एक सामान्य समूह के संयुक्त स्वामित्व से ली गई है और आवश्यक परिणाम यह है कि जो संपत्ति का स्वामी है, उसे उसका प्रबंधन करने का अधिकार होगा। पारंपरिक हिंदू विधि के तहत, महिला को सहदायिक संपत्ति की हकदार नहीं माना जाता था; परिणामस्वरूप, वह कर्ता का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती थी।

हालाँकि, अधिनियम, 1956 की धारा 6 में संशोधन ने पारंपरिक हिंदू विधि के तहत समझे गए सहदायिक के अर्थ को फिर से परिभाषित किया है, जो अब केवल सहदायिक संपत्ति में हित के न्यागमन तक सीमित नहीं है, बल्कि कर्ता होने के अधिकार सहित सहदायिक की अन्य सभी घटनाओं को शामिल करता है। यह कहना कि एक महिला सहदायिक हो सकती है, लेकिन कर्ता नहीं, एक ऐसी व्याख्या होगी जो न केवल असंगत होगी, बल्कि संशोधन लागू करने के घोषित उद्देश्य के भी विरुद्ध होगी।

79. हमें इस निष्कर्ष के लिए **मुल्ला ऑन हिंदू लॉ, 20वें संस्करण-खंड के पृष्ठ 234-235** पर भी समर्थन मिलता है, जो संक्षेप में संशोधन अधिनियम, 2005 की सबसे तार्किक व्याख्या को निम्नानुसार व्यक्त करता है:

> *हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम को हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005 द्वारा संशोधित किया गया है। संशोधन के परिणामस्वरूप मिताक्षरा सहदायिकी में पुत्रियों को* पुत्रों *के बराबर दर्जा दिया गया है।* ***ऐसा प्रतीत होता है कि सहदायिक की पुत्रियों को पुत्रों के जैसे समान अधिकार दिए जाने के बाद, अब पुत्री की कर्ता या प्रबंधक बनने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।*** *इसमें प्रेमी को विभिन्न कारकों पर निर्भर होना पड़ेगा, जैसे परिवार में अन्य भोजन की उपस्थिति, और ऐसे पुरुष समकक्षों के लिए पुत्री की वरिष्ठता। लेखक की विनम्र राय में,* ***यदि कोई पुरुष सहदायिक कर्ता के रूप में कार्य करने में सक्षम है, तो वह कर्ता बन जाएगा। तथापि, यदि पुत्री ऐसे पुरुष सहदायिक से***

वरिष्ठ है, तो पुत्री कर्ता बन जाएगी, अगर वह कर्ता के रूप में कार्य नहीं करने की इच्छा व्यक्त न करे।

80. अपीलार्थी ने *श्रेया विद्यार्थी बनाम अशोक विद्यार्थी (पूर्वोक्त)* मामले पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि एक महिला, भले ही सहदायिक के रूप में मान्यता प्राप्त हो, कर्ता

81. का औहदा नहीं पा सकती। उक्त मामले में, एक सहदायिक की विधवा के अधिकार विचाराधीन थे, जिसे कर्ता होने का हकदार नहीं माना गया था। एक विधवा को उसके पति के परिवार के एचयूएफ का कर्ता बनने से वंचित करने का कारण इस सिद्धांत से उत्पन्न होता है कि पत्नी विवाह के बाद केवल अपने पति के एचयूएफ की सदस्य बनती है, न कि सहदायिक। हालाँकि, इस स्थापित स्थिति को संशोधित धारा 6 के तहत दिए गए अधिकारों के साथ विभेदित किया जाना चाहिए क्योंकि उक्त संशोधन पत्नी के बजाय सहदायिक की पुत्री से संबंधित है। इस प्रकार, *श्रेया विद्यार्थी बनाम अशोक विद्यार्थी (पूर्वोक्त)* पर भरोसा करना गलत है और इससे अपीलार्थी को कोई सहायता नहीं मिलती है।

82. इस प्रकार, हम विद्वान एकल न्यायाधीश की टिप्पणियों से सहमत हैं कि अधिनियम, 1956 की धारा 4 को विधानमंडल द्वारा स्पष्ट रूप से किए गए कार्य को रोकने के लिए अविचारणीय रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। किसी

महिला को सहदायिक और फलस्वरूप कर्ता बनने के अधिकार से वंचित करने के लिए कोई अन्य व्याख्या करना, महिला को पुरुष की तरह ही संपत्ति पर समान अधिकार देने के मूल उद्देश्य पर आघात होगा। संपत्ति के प्रबंधन का अधिकार स्वामित्व के लिए आकस्मिक है, और यह दावा करना तर्कहीन है कि संपत्ति के स्वामी को इसे प्रबंधित करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

मुद्दा संख्या 6: –

> ***डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ के अस्तित्व को मानते हुए, क्या वादी को एचयूएफ का अभिन्न अंग माना जा सकता है, विशेष रूप से 1977 में उसके विवाह के बाद, और क्या वादी कभी भी एचयूएफ के मामलों में सहदायिक के रूप में शामिल हुई है, और इसका प्रभाव क्या है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)***

82. अपीलार्थी का दावा है कि विद्वान एकल न्यायाधीश इस महत्वपूर्ण पहलू को समझने में विफल रहे कि आध्यात्मिक और प्रबंधकीय कर्तव्यों का निर्वहन एचयूएफ के कर्ता द्वारा किया जाता है, जिसे प्रत्यर्थी संख्या 1, एक महिला होने के नाते, नहीं कर सकती। इस प्रकार, यह स्वीकार करना होगा कि केवल अपीलार्थी, सबसे वरिष्ठ पुरुष सहदायिक होने के नाते, "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का कर्ता बनने का पात्र है।

83. यह तर्क मिताक्षरा विधि की पृष्ठभूमि में कर्ता के धार्मिक और पारिवारिक दायित्वों को निभाने के लिए महिला की आवश्यक योग्यता का मौलिक प्रश्न उठाता है।

<u>महिला सहदायिक की आध्यात्मिक प्रभावकारिता: –</u>

84. *<u>सुरेन्द्रनाथ बनाम मुसम्मत हीरामणि,</u>* 12 एम.आई.ए. 81 में प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के माननीय न्यायमूर्तिगण ने टिप्पणी की कि हिंदू विधि में उनके धर्म और संपत्ति के उत्तराधिकार के बीच इतना घनिष्ठ संबंध है कि श्राद्ध करने के अधिमान्य अधिकार को आमतौर पर एक सामान्य नियम के रूप में संपत्ति के उत्तराधिकार के अधिमान्य अधिकार को नियंत्रित करने वाला माना जाता है।

85. *<u>कटमा नचिवर बनाम शिवगंगा के राजा</u>*, 9 एम.आई. ए., 610 के मामले में, प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति ने प्रतिपादित किया कि उत्तराधिकार के दो प्रमुख नियम हैं जो कि हिंदू विधि में धार्मिक कर्तव्य और आहुति और बलिदान की बेहतर प्रभावकारिता और जीवित रहने पर आधारित हैं। जब दूसरा नियम लागू न हो सके तो पहले नियम का सहारा लेना चाहिए।

86. हिंदू विधि के अनुसार उत्तराधिकार की दो व्यवस्थाएं हैं: (1) मिताक्षरा व्यवस्था, और (2) दायभाग व्यवस्था। बंगाल में दायभाग व्यवस्था प्रचलित है, जबकि भारत के अन्य भागों में मिताक्षरा व्यवस्था प्रचलित है। दोनों ही

व्यवस्थाएं मनु के इस ग्रंथ पर आधारित हैं कि "निकटतम सपिंड को अगली विरासत मिलती है; उसके बाद सकुल्य, जो वेदों के उपदेशक या शिष्य होते हैं"। दोनों व्यवस्थाओं के बीच अंतर इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि जहां धार्मिक प्रभावकारिता का सिद्धांत दायभाग स्कूल के अंतर्गत मार्गदर्शक सिद्धांत है, वहीं मिताक्षरा स्कूल के अंतर्गत ऐसा कोई निश्चित मार्गदर्शक सिद्धांत नहीं है।

87. **दयाभाग** व्यवस्था मनु के ग्रंथों की एक भिन्न व्याख्या सामने लाती है। इसमें कहा गया है कि निकटतम सपिंड वह है जो पूर्वजों की आत्माओं की शांति के लिए आहुति दे सकता है और इस प्रकार, **धार्मिक प्रभावकारिता या आध्यात्मिक लाभ का सिद्धांत दायभाग विधि के तहत उत्तराधिकार का मार्गदर्शक सिद्धांत है।** यह कहना असंगत लग सकता है, लेकिन इस सिद्धांत का तर्क यह है कि हिंदू विधि के पारंपरिक सिद्धांतों के अनुसार, संपत्ति को किसी व्यक्ति के अंतिम संस्कार के खर्च का भुगतान करने का साधन माना जाता है, इस प्रकार उत्तराधिकार का अधिकार पूरी तरह से मृतक को दिए जाने वाले आध्यात्मिक लाभों के संदर्भ में विनियमित होता है।

88. **मिताक्षरा** सपिंडा की व्याख्या रक्त में निकटतम व्यक्ति के रूप में करती है जो उत्तराधिकारी होगा। इसलिए, मिताक्षरा व्यवस्था रक्त संबंध या रक्त संबंध की निकटता पर आधारित है। *उत्तराधिकार की मिताक्षरा विधि का मूल सिद्धांत वंशानुगतता है, इस महत्वपूर्ण अपवाद के साथ कि पुत्री के पुत्र (नाती) के*

अलावा कोई भी सजातीय वरीयता में सगोत्र का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता है। उत्तराधिकार के क्रम को निर्धारित करने के लिए मिताक्षरा विधि में आध्यात्मिक लाभ के सिद्धांत का उल्लेख नहीं मिलता है। भिन्न गोत्रज सपिंडों में, परीक्षण निकटता का है, अर्थात रक्त में निकटताऔर सगे संबंध को सजातीयों की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार, मिताक्षरा संपत्ति के न्यागमन के दो तरीकों को मान्यता देता है, अर्थात् उत्तरजीविता और उत्तराधिकार। उत्तरजीविता के नियम संयुक्त परिवार की संपत्ति पर लागू होते हैं, और उत्तराधिकार के नियम अंतिम स्वामी द्वारा पूर्ण रूप से अलग-अलग रखी गई संपत्ति पर लागू होते हैं।

89. मुल्ला ने मिताक्षरा विधि स्कूल के अंतर्गत उत्तराधिकार के अधिकार की व्याख्या इस प्रकार की है: -

> ***"यद्यपि मिताक्षरा के अन्तर्गत उत्तराधिकार का अधिकार, आहुति देने के अधिकार से उत्पन्न नहीं होता है, फिर भी सगोत्र सपिण्डों के मामले में जब वरीयता का प्रश्न उठता है, तो लागू किया जाने वाला परीक्षण आहुति देने की क्षमता है,*** *किन्तु भिन्न गोत्र सपिण्डों के मामले में, 'प्राथमिक परीक्षण' 'रक्त का समीप होना' है और जब रक्त सम्बन्ध की मात्रा कोई निश्चित मार्गदर्शक प्रदान नहीं करती है, तो आध्यात्मिक लाभ प्रदान करने की क्षमता सर्वोत्तम है।"*

90. उपरोक्त चर्चा से, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दयाभाग विधि के तहत आध्यात्मिक दक्षता एक अपरिहार्य आवश्यकता है; हालाँकि, मिताक्षरा विधि के तहत ऐसा नहीं माना जा सकता। उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि मिताक्षरा विधि द्वारा शासित एचयूएफ के कर्ता द्वारा निभाए गए आध्यात्मिक कर्तव्य केवल इस तथ्य के संयोग मात्र थे कि पिछले समय में केवल पुरुष वंशज ही सहदायिक बनने के हकदार थे। इस प्रकार, पुत्रियों को सहदायिक अधिकार प्रदान करने वाली विधि में संशोधन के साथ, आध्यात्मिक दक्षता या कुछ अनुष्ठान करने की क्षमता मिताक्षरा विधि द्वारा शासित एचयूएफ के कर्ता बनने के लिए एक पूर्वापेक्षित योग्यता नहीं बन सकती।

91. आध्यात्मिक दक्षता पर तभी विचार किया जाता है जब वरीयता का प्रश्न उठता है। वर्तमान मामले में, अपीलार्थी की तुलना में प्रत्यर्थी सं. 1 की आयु के अनुसार स्पष्ट वरिष्ठता से वरीयता का प्रश्न समाप्त हो जाता है।

<u>विवाह के बाद पारिवारिक मामलों में शामिल न होना:-</u>

92. अपीलार्थी ने यह भी दावा किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1, 1969 में अपने विवाह के बाद से एचयूएफ संपत्तियों के प्रबंधन में शामिल नहीं हुई है। यह मनु गुप्ता/अपीलार्थी ही थे जिन्होंने 14.02.2006 को स्वर्गीय श्री आर.एन. गुप्ता के निधन के बाद संपत्तियों के प्रबंधन और इसके आयकर रिटर्न दाखिल करने का कार्यभार संभाला था। इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 1 को कर्ताधर्म का दावा करने का

कोई अधिकार नहीं है। इस संबंध में सबसे पहले यह जांच करना उचित है कि क्या कर्ता का स्थान उस व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जो वास्तव में सभी प्रबंधकीय कर्तव्यों को पूरा करता है या क्या यह ऐसा स्थान है जो कानून द्वारा प्रदान किया जाता है।

93. *भारत संघ बनाम श्री राम बोहरा एवं अन्य* (1965) 2 एससीआर 830 मामले में शीर्ष न्यायालय ने एक अजीबोगरीब सवाल पर विचार किया कि क्या एक एचयूएफ के एक ही समय में दो कर्ता हो सकते हैं। उक्त एचयूएफ में व्यावसायिक गतिविधियों का प्रबंधन दो सहदायिकों द्वारा किया जाता था, जिन्होंने एक वाद में स्वयं को एचयूएफ का कर्ता बताया था। इस बात पर बल देते हुए कि एचयूएफ के एक ही समय में दो कर्ता नहीं हो सकते, यह निष्कर्ष निकाला गया कि परिवार का कोई भी सदस्य परिवार की ओर से व्यवसाय आदि चलाने के लिए प्रबंधक के रूप में कार्य कर सकता है। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि ऐसे प्रतिनिधि एचयूएफ के कर्ता बन जाते हैं। इस प्रकार, एचयूएफ का प्रबंधन करने और कानूनी मामलों में इसका प्रतिनिधित्व करने का उनका अधिकार परिवार या कर्ता द्वारा दिए गए अधिकार से प्राप्त होता है, न कि हिंदू विधि के किसी सिद्धांत से। न्यायालय ने भगवान दयाल बनाम

रेवती देवी (1962) 3 एससीआर 440 के निर्णय पर भरोसा किया जिसमें निम्नलिखित टिप्पणी की गई थी: -

> *"कानूनी स्थिति इस प्रकार बताई जा सकती है: सहदायिकता हिंदू विधि का जीव है और पुनर्मिलन के मामले को छोड़कर पक्षकारगण के समझौते से इसका निर्माण नहीं किया जा सकता है।* ***सामान्यतः प्रबंधक, या परिवार के सदस्यों की व्यक्त या निहित सहमति से, कोई अन्य सदस्य या सदस्य व्यवसाय चला सकते हैं या संपत्ति अर्जित कर सकते हैं। उक्त विधि द्वारा निर्धारित सीमाओं के अधीन, परिवार के लिए या उसकी ओर से।"***

94. *मदन मोहन बनाम बालकिशन दास* 1964 एससीसी ऑनलाइन पुंज 256 मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने कहा कि कुछ असाधारण मामलों में, कर्ता को सबसे वरिष्ठ सहदायिक होना जरूरी नहीं है। जैसा भी हो, एक प्रबंध सदस्य केवल इसलिए कर्ता नहीं बन जाता कि वह एचयूएफ के सदस्यों की ओर से उसकी संपत्तियों का प्रबंधन कर रहा था।

95. इसी तरह, *सुंदरलाल नानालाल (एचयूएफ) बनाम आयकर आयुक्त, गुजरात-, अहमदाबाद* 1983 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 198 में, यह देखा गया कि एचयूएफ का कर्ता, अपनी वृद्धावस्था और खराब स्वास्थ्य के कारण,

परिवार की ओर से एक समझौते के माध्यम से एक सहदायिक को व्यवसाय के प्रबंधन की भूमिका सौंप सकता है।

96. उपर्युक्त निर्णयों से हम यह देख सकते हैं कि यद्यपि एक एचयूएफ के दो कर्ता नहीं हो सकते हैं, क्योंकि यह एचयूएफ के सबसे बड़े सदस्य का कानूनी अधिकार है, लेकिन दी गई परिस्थितियों में प्रबंधन का कर्तव्य किसी अन्य सहदायिक द्वारा निभाया जा सकता है। प्रबंधकीय जिम्मेदारी का यह प्रतिनियोजन कर्ता की कानूनी हक को समाप्त कर देता है, जब तक कि कानूनी रूप से कर्ता होने का हकदार व्यक्ति द्वारा इसका त्याग नहीं कर दिया जाता।

97. इस प्रकार, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि कर्ता होना कानूनी औहदा दिया जाना है, जिसमें एचयूएफ संपत्तियों का प्रबंधन करने का अधिकार शामिल है और भले ही अपीलार्थी ने संपत्ति का प्रबंधन करने के लिए एचयूएफ की ओर से आधिकारिक पत्राचार में खुद को कर्ता के रूप में प्रस्तुत किया हो, लेकिन इससे परिवार के सहदायिक के सबसे बड़े सदस्य, भले ही वह महिला हो, के कर्ता होने का दावा करने के कानूनी अधिकार को नहीं छीना जाता है।

<u>सामाजिक रूढ़ियाँ - सामाजिक स्वीकृति:-</u>

98. अपीलार्थी ने असंख्य परिकल्पनाएं प्रस्तुत की हैं जिसमें यह बताया गया है कि सामाजिक दृष्टिकोण से एक महिला का कर्ता बनना गलत क्यों होगा।

99. परंपरागत रूप से, सबसे वरिष्ठ पुरुष को प्रदत्त शक्ति के कारण परिवार में सम्मान और आज्ञा पालन का अधिकार प्राप्त होता है। आज एक महिला कर्ता को समान सम्मान प्राप्त करने में एकमात्र बाधा परिवार की सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को स्वीकार करने की अनिच्छा है। कई बार, विधि में परिवर्तन या संशोधन सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करने के लिए एक उत्प्रेरक बन जाता है, जैसा कि *बादशाह बनाम उर्मिला बादशाह गोडसे और अन्य* (2014) 1 एससीसी 188 में कहा गया है।

100. भारत के विधि आयोग ने *महिलाओं के संपत्ति अधिकारों पर अपनी 174वीं रिपोर्ट: हिंदू विधि के तहत प्रस्तावित सुधार (2000)* में एक महिला द्वारा कर्ता की भूमिका ग्रहण करने के विचार से सामाजिक असहजता को उस समय महसूस किया था, जब राज्य संशोधन अधिनियमों ने सहदायिकता में पुत्री के हित को मान्यता देना शुरू किया था: -

> *"3.2.12 1956 के हि.उत्त.अधि. ने सहदायिकता की अवधारणा को समाप्त नहीं करने में संकोच किया, जिसे अधिनियम को करना चाहिए था। लेकिन हिंदू उत्तराधिकार (राज्य संशोधन) अधिनियमों ने सहदायिक की पुत्री को पुत्र के समान सहदायिक बनने का अधिकार प्रदान किया है, जिससे भाई-बहन के रिश्ते पर असर पड़ सकता है। **ऐसा***

प्रतीत होता है कि जहां पुत्रियों को सहदायिक बना दिया गया है, वहां अभी भी उसे कर्ता बनाने में अनिच्छा है क्योंकि सामान्य पुरुष दृष्टिकोण यह है कि वह संपत्तियों का प्रबंधन करने या व्यवसाय चलाने में असमर्थ है और यदि वह विवाहित है तो वह अपने पति और उसके परिवार के प्रभाव के प्रति संवेदनशील होती है। *यह स्पष्ट रूप से अनुचित प्रतीत होता है* ***क्योंकि महिलाएं खुद को किसी भी कार्य में पुरुषों के समान ही काबिल साबित कर रही हैं और यदि महिलाएं अपने पतियों और उनके परिवारों से प्रभावित होती हैं, तो पुरुष भी अपनी पत्नियों और उनके परिवारों से कम प्रभावित नहीं होते हैं।***

101. अनुभव से पता चला है कि कोई भी संस्कृति या प्रथा जो समाज में रची-बसी है, जब उसमें प्रणालीगत परिवर्तन किए जाते हैं तो उन्हें समाज द्वारा कुछ आशंकाओं और प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। लेकिन समय बीतने के साथ यह सामाजिक परिवर्तन का एक उपकरण बन जाता है। अधिनियम, 1956 की धारा 6 में संशोधन, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत प्रदत्त समानता के अधिकार पर आधारित है। इस तरह की सामाजिक नाराजगी *नवतेज सिंह जौहर एवं अन्य बनाम भारत संघ, विधि एवं न्याय मंत्रालय, (2018) 1 एससीसी 791; के.एस. पुट्टस्वामी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य,* (2017) 10 एससीसी 1 के मामलों में भी देखी गई, जहां लोकप्रिय

स्वीकृति की कसौटी पर यह माना गया कि संवैधानिक अधिकारों की गारंटी इस बात पर निर्भर नहीं करती कि उनके प्रयोग को बहुसंख्यकवादी राय द्वारा अनुकूल माना जाए। *लोकप्रिय स्वीकृति की कसौटी,* संवैधानिक संरक्षण की पवित्रता के साथ प्रदत्त वैधानिक अधिकारों की अवहेलना करने के लिए कोई वैध आधार प्रस्तुत नहीं करती है।

102. इसके अलावा, सहदायिक में सदस्यों के अधिकार अप्रभावित रहते हैं, भले ही एक महिला सहदायिक उसके कर्ता के रूप में कार्य करती है, क्योंकि सहदायिकों को उन्हीं अधिकारों और हितों का आनंद मिलता रहता है जो अन्यथा उन्हें प्राप्त होते हैं; सहदायिक के रूप में उनके अधिकारों पर किसी भी तरह से कोई आंच नहीं आती है। यदि महिला सहदायिक की कर्ता के रूप में कार्य करने की कुशलता, दक्षता, ईमानदारी या क्षमता के बारे में कोई संदेह उत्पन्न होता है या वह अपने ससुराल वालों से प्रभावित होती है, तो अन्य सहदायिकों के पास विभाजन की मांग करने या कर्ता द्वारा संपत्ति के किसी भी गलत अन्यसंक्रामण को चुनौती देने के लिए पर्याप्त उपाय हैं।

103. इसके अलावा, यह तर्क कि महिला कर्ता के पति का उसके पिता के परिवार के एचयूएफ की गतिविधियों पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण होगा, केवल एक संकीर्ण मानसिकता है, जिसे विधानमंडल ने भी अधिनियम, 1956 की धारा 14 के माध्यम से समाप्त करने का प्रयास किया था, ताकि महिलाओं को अपनी

संपत्ति का पूर्ण स्वामी होने का लंबे समय से प्रतीक्षित अधिकार प्रदान किया जा सके। यदि अपीलार्थी द्वारा उद्धृत इस तर्क के मद्देनजर किसी महिला को कर्ता बनने से प्रतिषिद्ध किया जाता है, तो यह अधिनियम, 1956 की धारा 14 के माध्यम से महिलाओं को अचल संपत्तियों में अधिकार देने के विधायी प्रयास को महज एक छलावा मात्र बना देगा। अत:, जिस महिला के पास संपत्ति का पूर्ण स्वामित्व है, उसे इस तर्क के आधार पर संपत्ति के प्रबंधन के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता कि वह अपने ससुराल वालों से प्रभावित हो सकती है। इस प्रकार, सामाजिक आशंका और अनिच्छा पितृसत्तात्मक भेदभाव को दूर करने के लिए विधायी अधिनियमों को कभी भी तीव्र नहीं कर सकती।

104. इसलिए, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि न तो विधानमंडल और न ही पारंपरिक हिंदू विधि किसी भी तरह से एक महिला के कर्ता होने के अधिकार को सीमित करती है। साथ ही, सामाजिक धारणाएं विधानमंडल द्वारा स्पष्ट रूप से प्रदत्त अधिकारों से इनकार करने का कारण नहीं हो सकती हैं। प्रत्यर्थी संख्या 1 के एचयूएफ का कर्ता होने में कोई बाधा नहीं है।

<u>मुद्दा संख्या 4:-</u>

"क्या वादी डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ की सदस्य है? और यदि हाँ, तो इसका क्या प्रभाव है?" (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

मुद्दा संख्या 7:-

डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ के अस्तित्व को मानते हुए, क्या वादी सहदायिक है और कानूनी रूप से कर्ता होने की हकदार है? (साबित करने का दायित्व वादी पर है)

105. प्रत्यर्थी संख्या 9 और 10 का मामला यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 1, 2006 के संशोधन अधिनियम के लागू होने के समय जीवित सहदायिक की पुत्री नहीं थी, क्योंकि उसके पिता की मृत्यु, 2005 के संशोधन अधिनियम के लागू होने से पहले हो गई थी।

106. *प्रकाश एवं अन्य बनाम फुलवती (पूर्वोक्त)* के मामले में दिए गए निष्कर्ष के अनुसार, 09.09.2005 तक जीवित सहदायिकों की जीवित पुत्रियां प्रतिस्थापित धारा 6 के अंतर्गत अधिकारों की हकदार हैं, भले ही ऐसी पुत्रियां कभी भी पैदा हुई हो। हालांकि, *विनीता शर्मा (पूर्वोक्त)* के ऐतिहासिक मामले में शीर्ष न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निष्कर्ष निकाला कि *प्रकाश एवं अन्य (पूर्वोक्त)* में न्यायालय ने इस मुद्दे पर ध्यान नहीं दिलाया कि सहदायिक कैसे बनता है। सहदायिक बनाने या सहदायिक बनने के लिए पिछले सहदायिक का जीवित होना आवश्यक नहीं है; जो बात मायने रखती है वह है सहदायिकी की पीढ़ी के भीतर जन्म, जिस तक यह विस्तारित है। उत्तराधिकार का तरीका, सहदायिक बनाने की प्रक्रिया नहीं, अस्तित्व बनाए रखने का है।

107. इस प्रकार, शीर्ष न्यायालय ने अधिनियम, 1956 की संशोधित धारा 6 के तहत सहदायिक के रूप में पुत्री के अधिकारों को स्पष्ट किया और निष्कर्ष निकाला कि यह आवश्यक नहीं है कि संशोधन की तिथि पर पुत्री का पिता जीवित हो।

108. *<u>विनीता शर्मा (पूर्वोक्त)</u>* में शीर्ष न्यायालय ने आगे कहा कि अधिनियम, 1956 की धारा 6(1) के संशोधित प्रावधान में यह प्रावधान है कि संशोधन की तिथि से ही पुत्री को "स्वयं के अधिकार के रूप में" और "पुत्र की तरह ही" सहदायिकता का अधिकार प्रदान किया जाता है। सहदायिक का अधिकार जन्म से होता है, और सहदायिकता की संपत्ति के संबंध में अधिकार पर भी पुत्र के समान ही अधिकार दिए जाते हैं। **इसलिए, चूंकि यह अधिकार जन्म के आधार पर प्राप्त किया जाता है, इसलिए यह तब तक प्रकृति में अप्रतिरोधक है जब तक जन्म सहदायिकता की पीढ़ी के भीतर है।** इस प्रकार, यह अप्रासंगिक है कि जिस सहदायिक की पुत्री को अधिकार प्रदान किए गए हैं, वह जीवित है या नहीं, क्योंकि सहदायिक होने का अधिकार पिता के अस्तित्व से स्वतंत्र है, जिससे प्रत्यर्थी सं. 1 सबसे वरिष्ठ जीवित सहदायिक बन जाती है।

109. इस प्रकार, हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के प्रारंभ से सहदायिक की पुत्री का सहदायिक का दर्जा प्राप्त करने का अधिकार उसके पिता

के जीवन काल पर निर्भर नहीं हो सकता है। ऐसा भेद निश्चित रूप से उस स्पष्ट भिन्नता की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता, जिसे संशोधन के माध्यम से संबोधित करने का प्रयास किया गया था।

110. यही तर्क शुरू में अपीलार्थी द्वारा भी उठाया गया था, तथापि, *विनीता शर्मा* (पूर्वोक्त) के निर्णय के आलोक में महिला के सहदायिक अधिकार को स्वीकार करते हुए इसे वापस ले लिया गया था।

111. इस प्रकार, हम विद्वान एकल न्यायाधीश की टिप्पणियों से सहमत हैं कि केवल इसलिए कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पिता की मृत्यु संशोधन अधिनियम, 2005 के लागू होने से पहले हो गई थी, कर्ता होने का उसका अधिकार नहीं समाप्त गया है।

मुद्दा संख्या 3:-

क्या कोई सहदायिक संपत्ति या एचयूएफ मौजूद है? साबित करने का दायित्व वादी पर है"

मुद्दा संख्या 5

"क्या वादी के हित 1984 में उसके पिता श्री के.एम. गुप्ता के निधन पर अलग हो गए थे?"(साबित करने का दायित्व प्रतिवादी पर है)

112. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 01.04.1999 के पारिवारिक समझौते प्र. अभि.सा. 1/5 का सन्दर्भ देते हुए कहा था कि प्रत्यर्थी सं. 1, 1999 के उक्त पारिवारिक समझौते में एक पक्ष थी, क्योंकि वह किशन मोहन गुप्ता की पुत्री

होने के नाते स्वीकृत सहदायिक थी, अतः इस मामले को प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में समाप्त किया जाना चाहिए।

113. जबकि प्रत्यर्थी संख्या 1, अधिकार के रूप में जन्म से सहदायिक होगी, यह अधिकार 2005 के संशोधन अधिनियम के प्रभावी होने पर डी.आर. गुप्ता एचयूएफ के अस्तित्व और निरंतरता पर निर्भर करता है। अधिनियम की धारा 6(1) का परन्तुक स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि *इस उपधारा में निहित कोई भी बात 20 दिसंबर, 2004 से पहले हुए संपत्ति के विभाजन या वसीयती निपटान सहित किसी निपटान या अन्य संक्रामण को प्रभावित या अवैध नहीं करेगी।*

114. अपीलार्थी ने एक अन्य वाद (प्रत्यर्थी संख्या 9 और 10 द्वारा दायर विभाजन वाद सी.एस.(ओ.एस.) 142/2008) में प्रत्यर्थी सं. 1 के लिखित बयान के आधार पर उसके सहदायिक अधिकार पर हमला किया है और उसे चुनौती दी है, जहां उसने दावा किया था कि वाद के अंतर्गत संपत्ति का बंटवारा 1999 में ही हो चुका है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी सं. 1 कर्ता होने का दावा नहीं कर सकता, जब सहदायिक का अस्तित्व ही समाप्त हो गया है।

115. निस्संदेह, श्री डी.आर. गुप्ता, जो वाद के सभी पक्षकारगण के इकलौते पूर्वज थे, ने 05.01.1963 को "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का गठन किया था, जिसमें उनके पांच पुत्र सहदायिक थे। श्री डी.आर. गुप्ता ने चल और

अचल दोनों प्रकार की संपत्तियों को एचयूएफ के स्वामित्व हेतु एक ही साझी संपत्ति में शामिल कर दिया था। एचयूएफ का आयकर निर्धारण किया गया तथा उसे पैन संख्या एएए एचडी 4230 एम आवंटित किया गया। इसके अलावा, इसमें कोई विवाद नहीं है कि श्री डी.आर. गुप्ता के सभी पुत्रों की मृत्यु हो चुकी है, जिनमें अंतिम पुत्र श्री आर.एन. गुप्ता थे, जिनकी मृत्यु 14.02.2006 को हुई।

116. **अहम सवाल यह है कि क्या एचयूएफ 02.09.1977 को श्री डी.आर. गुप्ता के निधन के बाद विघटित हो गया था या उनके पांच पुत्रों के निधन के बाद भी जारी रहा।**

117. अपीलार्थी प्र.सा.1/मनु गुप्ता ने यह गवाही दी थी कि "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का अस्तित्व श्री डी.आर. गुप्ता के निधन के बाद वर्ष 1971 में समाप्त हो गया था और इस प्रकार, किसी के भी इस एचयूएफ का कर्ता होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अभि.सा.3/एन.वी. सत्यनारायण, रक्षा संपदा अधिकारी, दिल्ली सर्कल, दिल्ली ने वाद के अंतर्गत संपत्ति के दाखिल खारिज के संबंध में श्री कृष्ण मोहन (प्रत्यर्थी संख्या 1 के पिता) की पत्नी श्रीमती शांता के. मोहन

को संबोधित पत्र दिनांक 01.06.1985 प्र. अभि.सा 3/क की एक प्रति प्रस्तुत की। उक्त पत्र निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत हैः -

	संख्याः 3/220-एफ//180
	रक्षा संपदा कार्यालय, दिल्ली सर्कल,
सेवा में	*दिल्ली छावनी दिनांक 01 जून, 1985.*
	श्रीमती शांता के. मोहन पत्नी
	स्वर्गीय श्री कृष्ण मोहन
	18, आनंद लोक, नई दिल्ली।
	विषय : <u>स्वर्गीय श्री कृष्ण मोहन (कर्ता) (एचयूएफ)</u> उत्तराधिकारी के नाम पर शमन। *निवासी सं. 4, यूनिवर्सिटी रोड, दिल्ली में।* *आपके पत्र दिनांक 16/21.8.1984 के अंतर्गत दिनांक 24 अगस्त, 1984 को इस कार्यालय में प्राप्त आपके शपथ पत्र दिनांक 13.8.1984 का संदर्भ लें।*
	*2. आपको सूचित किया जाता है कि ऊपर उद्धृत आपके पत्र के तहत अनुरोध की गई आवश्यक प्रविष्टियाँ स्वर्गीय **श्री कृष्ण मोहन के उत्तराधिकारी के रूप में इस कार्यालय के अभिलेख में दर्ज कर दी गई हैं।***

	() श्रीमती शांता के. मोहन
	() श्रीमति. सुज़ाता शर्मा
	() श्रीमती राधिका सेठ
	3. यह आपकी जानकारी और अभिलेख के लिए है।

हस्ताक्षर/-
रक्षा संपदा अधिकारी, दिल्ली सर्कल।
(ए.पी. सिंह)

118. उपरोक्त पत्र के मात्र अवलोकन से यह स्पष्ट है कि श्रीमती शांता के. मोहन, श्रीमती सुजाता शर्मा और श्रीमती राधिका सेठ, जो कि स्वर्गीय कृष्ण मोहन गुप्ता के विधिक वारिस थे, उनके दिनांक 13.08.1984 के शपथ पत्र के अनुसार, स्वामियों के रूप में जोड़े गए थे और संपत्ति को स्वर्गीय श्री कृष्ण मोहन गुप्ता के उपरोक्त तीन विधिक वारिसों के संयुक्त नाम पर दाखिल खारिज किया गया था। दिनांक 01.06.1985 के दाखिल खारिज पत्र प्र. अभि.सा. 3/क से पता चलता है कि स्वर्गीय श्री कृष्ण मोहन गुप्ता की दो पुत्रियों को भी संयुक्त स्वामियों के रूप में अभिलेख में दर्ज किया गया था। यह न तो आवश्यक था और न ही स्वीकार्य था, क्योंकि 1971 में पुत्रियों को सहदायिक के रूप में मान्यता नहीं दी गई थी। यदि 01.10.1971 को स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता के

निधन के बाद भी एचयूएफ जारी रहता तो दाखिल खारिज में पुत्रियों को शामिल करने की प्रक्रिया कभी नहीं होती।

119. प्रासंगिक दूसरा दस्तावेज दिनांक 05.08.2003 प्र. अभि.सा.3/ख का पत्र है, जो रक्षा संपदा कार्यालय द्वारा श्री आर.एन. गुप्ता (तत्कालीन एच.यू.एफ. के कर्ता) को संबोधित अभि.सा.3 द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जो स्वर्गीय श्री जे.एन. गुप्ता, स्वर्गीय श्री बी.एन. गुप्ता और स्वर्गीय श्री एम.एन. गुप्ता के विधिक वारिसों के नाम पर वादांतर्गत संपत्ति के दाखिल खारिज से भी संबंधित है। पत्र में उपरोक्त सभी विधिक वारिसों को कर्ता स्वर्गीय श्री आर.एन. गुप्ता के माध्यम से वादांतर्गत संपत्ति का संयुक्त स्वामी घोषित किया गया।

120. उपरोक्त दो दस्तावेजों से पता चलता है कि चारों मृतक भाइयों के सभी विधिक वारिसों को व्यक्तिगत रूप से और पृथक रूप से संयुक्त स्वामियों के रूप में अभिलेखों में दर्ज किया गया था। यद्यपि संपत्ति को एचयूएफ संपत्ति घोषित किया गया, लेकिन लड़कियों सहित सभी विधिक वारिसों को संयुक्त स्वामी बनाया गया। **यदि स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता के निधन के बाद भी एचयूएफ जारी रहता, तो संपत्ति का दाखिल खारिज पुत्रियों के नाम पर नहीं किया जाना चाहिए था, क्योंकि तत्कालीन विधि के अनुसार वे सहदायिक नहीं थीं।** यह तथ्य कि सभी विधिक वारिसों को समय-समय पर उनके पिता की मृत्यु पर वादांतर्गत संपत्ति के दाखिल खारिज अभिलेख में संयुक्त स्वामी के रूप में

अभिलिखित किया गया है, **इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता की मृत्यु के बाद कोई एचयूएफ जारी नहीं रहा और एचयूएफ की संपत्तियां श्री डी.आर. गुप्ता के विधिक वारिसों की संयुक्त संपत्ति बन गईं।**

121. प्रत्यर्थी सं. 1 सुजाता शर्मा ने दावा किया है कि मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड में जमा राशि और शेयरों के संबंध में चल संपत्ति का आंशिक विभाजन 26.03.1977 को हुआ था। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस आंशिक विभाजन के अनुसार, प्रत्येक सहदायिक एचयूएफ से, एचयूएफ द्वारा धारित मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड की जमाराशि से 28,000/- रुपये की राशि प्राप्त करने का हकदार हो गया तथा इसके अतिरिक्त प्रत्येक को मोटर जनरल एंड फाइनेंस लिमिटेड के 1000 इक्विटी शेयर अपने-अपने हिस्से के रूप में मिलने थे, जबकि अन्य संपत्तियां एचयूएफ में बनी रहीं। आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 171 के तहत अपेक्षित आंशिक विभाजन की सूचना भी भेजने पर सहमति व्यक्त की गई।

122. एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जो बताया गया और जिस पर अनिवार्य रूप से सभी पक्षकारगण द्वारा विवाद नहीं उठाया गया, सिवाय श्रीमती मीरा साहनी और श्रीमती गार्गी गुप्ता (प्रत्यर्थी सं. 9 और 10, जो स्वर्गीय श्री बी.एन. गुप्ता की दो विधिक वारिस हैं) के, वह 01.04.1999 का एक पारिवारिक समझौता प्र.

अभि.सा.1/5 है, जिस पर स्पष्ट रूप से मृतक श्री डी.आर. गुप्ता के चार पुत्रों (श्री एम.एन. गुप्ता, श्री आर.एन. गुप्ता, श्री बी.एन. गुप्ता, श्री जे.एन. गुप्ता) और प्रत्यर्थी सं. 1/सुजाता शर्मा, उसकी बहन श्रीमती राधिका सेठ और उसकी मां श्रीमती शांता के. मोहन के हस्ताक्षर हैं, जो स्वर्गीय श्री कृष्ण मोहन (श्री डी.आर. गुप्ता के पुत्र) के विधिक वारिस हैं, जिसकी मृत्यु 18.02.1984 को हो गई थी।

123. इस *पारिवारिक समझौता ज्ञापन* के अनुसार, दिनांक 18.01.1999 को सभी पक्षकारगण के बीच मौखिक बंटवारा हुआ था और इसे दिनांक 01.04.1999 के समझौता ज्ञापन में दर्ज किया गया था। उक्त ज्ञापन में, यह स्पष्ट रूप से निम्नानुसार निर्धारित किया गया था: -

> *"2. दोनों पक्षकारगण इसकी पुष्टि करते हैं और घोषणा करते हैं कि दिनांक 18.1.1999 का मौखिक पारिवारिक समझौता निम्नलिखित शर्तों पर हुआ था।*
>
> > *2.1 पक्षकारगण यह स्वीकार करते हैं और पुष्टि करते हैं कि ये पक्षकारगण हिंदू अविभाजित परिवार डी.आर. गुप्ता एंड संस (एचयूएफ) के सदस्य हैं और प्रत्येक के पास वर्तमान में हिंदू अविभाजित परिवार के स्वामित्व वाली चल और अचल संपत्तियों में हिस्सेदारी है:*
> >
> > *a) श्री कृष्ण मोहन गुप्ता स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता के सबसे बड़े पुत्र थे, जिनकी मृत्यु 17 फरवरी 1984 को हुई थी*

और उनके परिवार में उनकी पत्नी श्रीमती शांता के. मोहन और पुत्री श्रीमती सुजाता शर्मा और श्रीमती राधिका सेठ हैं, जो "प्रथम पक्ष" के पक्ष के 1/5वें हिस्से की उत्तराधिकारी हैं।

b) *कर्ता के रूप में श्री महेंद्र नाथ गुप्ता (दूसरे भाग के पक्षकार) 1/5वाँ हिस्सा।*

c) *श्री रवीन्द्र नाथ गुप्ता (तीसरे भाग का पक्षकार) 1/5 हिस्सा।*

d) *श्री भूपेन्द्र नाथ गुप्ता (चौथे भाग का पक्षकार) 1/5वां हिस्सा।*

e) *श्री जितेन्द्र नाथ गुप्ता (पांचवें भाग का पक्षकार) 1/5वां हिस्सा।*

2.2 पक्षकार स्वीकार करते हैं और पुष्टि करते हैं कि हिंदू अविभाजित परिवार के पास निम्नलिखित चल और अचल संपत्तियां हैं।

a) *बंगला नं. 4 यूनिवर्सिटी रोड, दिल्ली*

b) *मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड का शेयर (4309शेयर)*

c) *बैंक ऑफ इंडिया में हिंदू अविभाजित परिवार डी.आर. गुप्ता एंड संस (एचयूएफ) का बैंक खाता। आसफ अली रोड, नई दिल्ली।*

d) *विजया बैंक, अंसारी रोड, नई दिल्ली में बैंक खाता*

e) *मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड के पास 6,400/- रुपए की जमाराशि।*

2.3 ***पक्षकारों ने हिंदू अविभाजित परिवार डी.आर. गुप्ता एंड संस (एचयूएफ) का विभाजन किया*** *और उक्त हिंदू अविभाजित परिवार के सदस्य होने के नाते पक्षकार उपरोक्त*

पैरा 2.2 में उल्लिखित हिंदू अविभाजित परिवार की चल और अचल संपत्तियों के हकदार थे और निम्नानुसार स्वामी थे:

a) *श्री कृष्ण मोहन गुप्ता (स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता के सबसे बड़े पुत्र, जिनका 17 फरवरी 1984 को निधन हो गया) और उनके परिवार में उनकी पत्नी श्रीमती शांता के मोहन और पुत्री श्रीमती सुजाता शर्मा और श्रीमती राधिका सेठ हैं, जो इस पक्ष के प्रथम भाग की वारिस हैं। 1/5वां हिस्सा।*

b) *श्री महेंद्र नाथ गुप्ता (द्वितीय पक्ष के कर्ता के रूप में)। 1/5वां हिस्सा।*

c) *श्री रविन्द्र नाथ गुप्ता (तीसरे भाग का पक्ष)। 1/5वां हिस्सा।*

d) *श्री भूपेन्द्र नाथ गुप्ता (चौथे भाग का पक्ष)। 1/5वां हिस्सा।*

e) *श्री जितेन्द्र नाथ गुप्ता (पांचवें भाग का पक्ष) 1/5वां हिस्सा।*

7. *कोई भी एक पक्ष या पक्षकारगण उक्त व्यवसाय के मामलों के संबंध में अपने कृत्यों या विलेखों द्वारा अन्य पक्षकारगण को बाध्य करने का हकदार नहीं होगा।*

8. ***पक्षकारगण के बीच इस बात पर भी सहमति हुई है कि एचयूएफ के विभाजन, यदि कोई हो, और इस पारिवारिक समझौते के अभिलेखन के बाद, अचल संपत्ति संख्या 4, यूनिवर्सिटी रोड, दिल्ली, राजस्व प्राधिकारी/सक्षम प्राधिकारी के समक्ष डी.आर. गुप्ता एंड संस, एचयूएफ के नाम पर बनी रहेगी।"***

124. जैसा कि पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है, परिवार के सभी सदस्यों ने समझौता ज्ञापन दिनांक 01.04.1999 प्र. अभि.सा.1/5 के इस दस्तावेज को स्वीकार कर लिया है। प्रासंगिक रूप से, यहां तक कि प्रत्यर्थी संख्या 9 और 10 ने भी इस वाद में इस दस्तावेज के निष्पादन पर विवाद नहीं उठाया है, बल्कि केवल इसकी वैधता पर ही सवाल उठाया है।

125. अपीलार्थी का दावा है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने एचयूएफ के अस्तित्व के संबंध में विरोधाभासी रुख अपनाया है। हालाँकि, हम पाते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने सि.वा.(मू.प.) 142/2008 में अपने लिखित बयान में केवल यह कहा है कि प्रत्येक शाखा के शेयर का निर्धारण करके एचयूएफ का विभाजन 2005 के संशोधन अधिनियम से पहले हुआ था और इस प्रकार, इस तरह के पूर्व विभाजन को फिर से नहीं खोला जा सकता है। यह कथन कुछ और नहीं बल्कि हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के अनुरूप है जो 09.09.2005 को लागू हुआ। संशोधित अधिनियम की धारा 6 (5) में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि यह प्रावधान उन मामलों में लागू नहीं होगा जहां विभाजन 20.12.2004 से पहले किया गया हो।

126. पक्षकारगण के साक्ष्य से यह बात सामने आई है कि एचयूएफ केवल राजस्व प्राधिकारी/सक्षम प्राधिकारी के साथ व्यवहार करने के उद्देश्य से ही जारी रहा। उक्त लिखित बयान का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है: -

"6. ... हालांकि, विभाजन के अनुसार, पक्षकारगण इस बात पर सहमत हुए कि अचल संपत्ति 4, यूनिवर्सिटी रोड, दिल्ली राजस्व प्राधिकरण/सक्षम प्राधिकारी के समक्ष डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ के नाम पर बनी रहेगी।"

127. पारिवारिक समझौते के संबंध में, अभि.सा.1 के रूप में प्रत्यर्थी संख्या 1 ने निम्नानुसार गवाही दी थी: -

"प्र 25. पारिवारिक समझौता दिनांक 1.4.1999 को आपके शपथपत्र में साक्ष्य प्र.अभि.सा 1/5 के रूप में संदर्भित किया गया है (जिस पर सबूत के तरीके पर आपत्ति है) कर्ता के प्रश्न के लिए कैसे प्रासंगिक है?

क. मैं प्रदर्श अभि.सा.1/5 की मूल प्रति (जो आयुक्त को दिखाई गई और वापस कर दी गई) साथ लाया हूं। ***यह दस्तावेज़ एचयूएफ के विभाजन का है। यह एक पारिवारिक समझौता है। इसमें सभी परिवारों का हिस्सा दिया जाता है और हमें कुछ प्राधिकारियों, जैसे रक्षा संपदा और अन्य प्राधिकारियों से निपटना होता है, जिसके लिए हमें कर्ता की आवश्यकता होती है। यह सबूत है।"***

128. अपीलार्थी ने ब.सा.1 के रूप में भी कुछ महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति की। यह पूछे जाने पर कि स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता की मृत्यु के बाद स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता, एचयूएफ का कर्ता कौन था, उन्होंने उत्तर दिया कि यह श्री कृष्ण मोहन गुप्ता था। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि श्री कृष्ण मोहन गुप्ता की मृत्यु के बाद, कोई कर्ता नहीं था, लेकिन सैन्य रक्षा संपदा कार्यालय के लिए, श्री

कृष्ण मोहन गुप्ता के निधन के बारे में जानकारी महेंद्र नाथ गुप्ता द्वारा दी गई थी, जो स्वयं को एचयूएफ का कर्ता मानते थे। श्री महेंद्र नाथ गुप्ता के बाद, ऐसा कोई कर्ता नहीं था, लेकिन सैन्य रक्षा संपदा कार्यालय के लिए, महेंद्र नाथ गुप्ता के निधन के बारे में जानकारी, श्री रविंदर नाथ गुप्ता द्वारा दी गई थी।

129. इसके बाद ब.सा.1/मनु गुप्ता (यहाँ अपीलार्थी) ने गवाही दी कि पहले आयकर रिटर्न दाखिल किया जाता था, लेकिन पिछले कई वर्षों से इसे दाखिल नहीं किया गया है। विशेष रूप से यह पूछे जाने पर कि क्या वह "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का सहदायिक है, ब.सा.1 ने कहा कि "यह मानते हुए कि *एचयूएफ मौजूद है, मैं सहदायिक हूं अन्यथा मैं संयुक्त परिवार का सदस्य हूं"।*

130. ब.सा.1/मनु गुप्ता ने आगे यह भी गवाही दी कि अपने पूर्ववर्ती सदस्यों की भांति, जिन्होंने परिवार के कर्ता के रूप में रक्षा संपदा कार्यालय को अपने पिछले कर्ता के निधन के बारे में सूचना दी थी, उसने भी उक्त कार्यालय को इसकी सूचना दी। यहां तक कि उसने मोटर एंड जनरल फाइनेंस लिमिटेड कंपनी, जहां एचयूएफ के कुछ शेयर हैं, को भी सूचित किया कि वे अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता का नाम श्री आर.एन. गुप्ता से बदलकर उसका नाम कर दें।

131. ब.सा.1/मनु गुप्ता ने यह भी गवाही दी कि वादांतर्गत संपत्ति के लिए गृहकर का भुगतान 2007 तक किया गया था, लेकिन इसके बाद उन्हें इसकी

जानकारी नहीं थी। गृहकर अदा करने की प्रणाली यह थी कि परिवार की सभी पांच शाखाएं गृहकर का भुगतान बराबर-बराबर करती थीं।

132. अपीलार्थी/ब.सा.1 की इन महत्वपूर्ण स्वीकारोक्ति और अभि.सा.3/एन.वी. सत्यनारायण, रक्षा संपदा अधिकारी द्वारा स्वर्गीय श्री डी.आर. गुप्ता के संबंधित पुत्रों के सभी कानूनी उत्तराधिकारियों के नाम पर संपत्ति के दाखिल ख़ारिज के संबंध में प्रस्तुत पत्रों से यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि श्री डी.आर. गुप्ता के निधन पर "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का अंत हो गया उसके सभी पुत्र पांच शाखाओं के रूप में अपने-अपने हिस्से के समान रूप से हकदार हो गए और परिणामस्वरूप, सभी को वादांतर्गत संपत्ति के स्वामी के रूप में नामित किया गया। इस प्रकार, 1977 के बाद कोई भी एचयूएफ नहीं रहा, बल्कि सबसे वरिष्ठ पुरुष सदस्य केवल नामकरण के उद्देश्य से और सभी परिवार के सदस्यों के अधिकृत प्रतिनिधि के रूप में खुद को डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ के कर्ता के रूप में दर्शाते हुए सभी स्वामियों की ओर से खुद का प्रतिनिधित्व कर रहा था।

133. अब, **दिनांक 01.04.1999 के समझौता ज्ञापन प्र. अभि.सा.1/5** पर आते हैं, सभी पक्षकारगण ने इस दस्तावेज के निष्पादन को स्वीकार किया है, यद्यपि उन्होंने इसकी अलग-अलग व्याख्या की है और विरोधाभासी दावे उठाए हैं।

134. **सबसे पहले,** समझौता ज्ञापन में कहा गया है कि 18.01.1999 को मौखिक विभाजन हुआ था। मौखिक विभाजन की वैधता को *काले बनाम चकबंदी निदेशक* 118 (1976) 3 एससीसी 119 के मामले में मान्यता दी गई है, माननीय शीर्ष न्यायालय ने बताया कि पारिवारिक समझौता कैसे किया जाता है, जो इस प्रकार है: -

> *"10. दूसरे शब्दों में, पारिवारिक समझौते के बाध्यकारी प्रभाव और अनिवार्यताओं को ठोस रूप में प्रस्तुत करने के लिए, मामले को निम्नलिखित प्रस्तावों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:*
>
> *(1) पारिवारिक समझौता वास्तविक होना चाहिए ताकि परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच* ***संपत्तियों का निष्पक्ष और न्यायसंगत विभाजन या आवंटन*** *करके पारिवारिक विवादों और प्रतिद्वंद्वी दावों को हल किया जा सके;*
>
> *(2) उक्त* ***समझौता स्वैच्छिक होना चाहिए*** *और धोखाधड़ी, जबरदस्ती या अनुचित प्रभाव से प्रेरित नहीं होना चाहिए;*
>
> *(3)* ***पारिवारिक व्यवस्था मौखिक भी हो सकती है जिस स्थिति में पंजीकरण आवश्यक नहीं है;***
>
> *(4) यह सुस्थापित है कि पंजीकरण तभी आवश्यक होगा जब पारिवारिक व्यवस्था की शर्तों को लिखित रूप में लिख दिया जाए। यहां भी, दस्तावेज के तहत ** की गई पारिवारिक व्यवस्था के शब्दों और अभिलेखों वाले दस्तावेज और पारिवारिक व्यवस्था के बाद तैयार किए गए एक मात्र ज्ञापन के बीच अंतर किया जाना चाहिए या तो अभिलेख के उद्देश्य से या आवश्यक दाखिल खारिज करने के लिए न्यायालय की जानकारी के लिए।* ***ऐसे मामले में ज्ञापन स्वयं अचल संपत्तियों में किसी भी अधिकार को***

बनाता या समाप्त नहीं करता है और इसलिए यह पंजीकरण अधिनियम की धारा 17(2) की रिष्टि में नहीं आता है और इसलिए, अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य नहीं है;

(5) जो सदस्य पारिवारिक व्यवस्था में पक्षकार हो सकते हैं, उनके पास कुछ पूर्ववर्ती अधिकार, दावा या हित होना चाहिए, यहां तक कि संपत्ति में एक संभावित दावा भी होना चाहिए जिसे समझौते के पक्षकारों द्वारा स्वीकार किया गया हो। भले ही समझौते के पक्षकारों में से किसी एक के पास कोई स्वामित्व न हो, लेकिन व्यवस्था के तहत दूसरा पक्ष ऐसे व्यक्ति के पक्ष में अपने सभी दावे या स्वामित्व छोड़ देता है और उसे एकमात्र स्वामी मानता है, तो पूर्ववर्ती स्वामित्व को स्वीकार किया जाना चाहिए और पारिवारिक व्यवस्था को बरकरार रखा जाएगा और न्यायालयों को इस पर सहमति देने में कोई कठिनाई नहीं होगी;

(6) यहां तक कि यदि वास्तविक विवाद, वर्तमान या संभावित, जिसमें कानूनी दावे शामिल नहीं हो सकते हैं, को एक वास्तविक पारिवारिक व्यवस्था द्वारा निपटाया जाता है जो निष्पक्ष और न्यायसंगत है, तो पारिवारिक व्यवस्था अंतिम होती है और समझौते के पक्षकारगण पर बाध्यकारी होती है।"

135. **दूसरा पहलू** दिनांक 01.04.1999 के समझौता ज्ञापन का पंजीकरण है, जिसमें दिनांक 18.01.1999 के मौखिक समझौते को दर्ज किया गया है। *तेग बहादुर भुजिल बनाम देबी सिंह भुजिल* एआईआर 1966 एससी 292 में,

माननीय उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि पारिवारिक व्यवस्था मौखिक रूप से भी की जा सकती है और पंजीकरण की आवश्यकता केवल तभी नहीं होगी जब इसकी शर्तों को पक्षकारगण के बीच सहमति के ज्ञापन के रूप में लिखित तौर पर दर्ज किया जाएगा। ज्ञापन को एक दस्तावेज़ के रूप में उपयोग करने के उद्देश्य से तैयार करने की आवश्यकता नहीं है जिस पर पक्षकारगण के भविष्य के स्वामित्व को स्थापित किया जा सके। इसे आम तौर पर जिस बात पर सहमति हुई है उसके अभिलेख के रूप में तैयार किया जाता है ताकि भविष्य में इसके बारे में कोई अस्पष्ट धारणा न रहे।

136. *कलवा देवदत्तम बनाम भारत संघ* एआईआर 1994 एससी 880 में, यह समर्थन करते हुए कि मौखिक विभाजन की अनुमति थी, माननीय शीर्ष न्यायालय ने टिप्पणी की कि सबूत का भार उस व्यक्ति पर रहता है जिसने इस तरह के विभाजन का दावा किया था। भागों पर अलग-अलग कब्ज़ा, संयुक्त संपत्ति की आय का विभाजन, राजस्व या भूमि पंजीकरण अभिलेखों में संयुक्त संपत्ति के शेयरों को परिभाषित करना, आपसी लेन-देन ऐसे कारक हो सकते हैं जो मौखिक समझौते को साबित करने के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं जैसा कि *भगवानी कुंवर बनाम मोहन सिंह एआईआर 1925 पीसी 132 और दिगंबर अधर पाटिल बनाम देवराम गिरधर पाटिल* एआईआर 1995 एससी 1728 में देखा गया है।

137. यह भी ध्यान रखना उचित है कि पारिवारिक समझौते के ज्ञापन पर केवल सहदायिक के प्रथम *शाखा* द्वारा ही हस्ताक्षर किए गए थे, उस समय उसके सभी सहदायिकों द्वारा नहीं। हिंदू विधि के तहत, हालांकि सभी सहदायिकों का एचयूएफ से संबंधित संपत्तियों में अविभाजित हिस्सा होता है, तथापि, प्रत्येक सहदायिक के अविभाजित स्वामित्व का यह सिद्धांत तब लागू नहीं होता जब एचयूएफ के सदस्य विभाजन करने का निर्णय लेते हैं। *ए.एम. नारायण साह बनाम ए. शंकर साह* 1929 एससीसी ऑनलाइन मैड 53 में मद्रास उच्च न्यायालय ने मेन की हिंदू विधि, पृष्ठ 346, पैराग्राफ 270 का संदर्भ दिया, जो इस प्रकार है: -

> *"यह कहना आम बात है कि एक अविभाजित परिवार में प्रत्येक सदस्य संयुक्त संपत्ति में अपना हिस्सा अपने मुद्दे पर स्थानांतरित करता है, और ऐसा मुद्दा प्रति व्यक्ति परस्पर संबंध रखता है, लेकिन अन्य सदस्यों के मुद्दे के संबंध में प्रति शाखा होती है। लेकिन यह हमेशा याद रखना चाहिए कि यह केवल एक बयान है कि विभाजन पर उनके अधिकार क्या होंगे। विभाजन होने तक उनके सभी अधिकार केवल साझा संपत्ति के साझा उपभोग में निहित हैं, इसके साथ ही पुरुष संतान को अपने प्रत्यक्ष पूर्वजों द्वारा किए गए अलगाव को रोकने का अधिकार भी दिया गया है।"*

138. इस प्रकार, जब एचयूएफ का विभाजन होता है, तो शेयरों को एचयूएफ की प्रत्येक शाखा के बीच विभाजित किया जाता है। हालांकि, शाखाओं के बीच इस विभाजन से प्रत्येक शाखा में एक अलग सहदायिक नहीं बनता है; बल्कि एक शाखा को आवंटित हिस्सा उसके सभी सदस्यों के बीच समान रूप से विभाजित किया जाता है।

139. वर्तमान मामले में, 1999 के पारिवारिक समझौते में शेयरों का निर्धारण 1/5 प्रति शाखा के रूप में किया गया है (जिसमें स्वर्गीय श्री के.एम. गुप्ता, श्री एम.एन. गुप्ता, आर.एन. गुप्ता, श्री जे.एन. गुप्ता के कानूनी उत्तराधिकारी शामिल हैं), इस प्रकार हिंदू विधि के अनुसार उनके संबंधित शेयरों का विभाजन हुआ।

140. इस संदर्भ में, *अप्पोवियर बनाम राम सुब्बा अय्यन* 11 एम.आई.ए. 75 (1866) में प्रिवी कौंसिल के निर्णय में एचयूएफ की स्थिति के विभाजन का तरीका बताया गया है, जो इस प्रकार है: -

> *"हिंदू विधि में अविभाजित परिवार की वास्तविक धारणा के अनुसार, उस परिवार का कोई भी एक सदस्य, जबकि वह अविभाजित रहता है, संयुक्त और अविभाजित संपत्ति पर पूर्वाग्रह नहीं कर सकता है, कि उसका, उस विशेष सदस्य का, एक निश्चित निश्चित हिस्सा है। अविभाजित परिवार का कोई भी व्यक्ति किराया प्राप्ति के स्थान पर जाकर किराए के वसूलीकर्ता या प्राप्तकर्ता से एक निश्चित हिस्सा लेने का दावा नहीं कर सकता था। अविभाजित परिवार के सिद्धांत के अनुसार, अविभाजित संपत्ति की आय को साझी तिजोरी या पर्स में*

लाया जाना चाहिए, और फिर अविभाजित परिवार के सदस्यों द्वारा उपभोग के तरीकों के अनुसार उसका निपटान किया जाना चाहिए। ***लेकिन जब एक अविभाजित परिवार के सदस्य विशेष संपत्ति के संबंध में आपस में सहमत होते हैं कि यह संपत्ति अब से कुछ निश्चित शेयरों में स्वामित्व के अधीन होगी, तब अविभाजित संपत्ति और संयुक्त उपभोग का स्वरूप उस विषय-वस्तु से अलग हो जाता है जिसके बारे में इस प्रकार सहमति हुई थी;*** *और संपत्ति में, प्रत्येक सदस्य के पास अब से एक निश्चित और निश्चित हिस्सा होता है, जिसे वह अलग-अलग प्राप्त करने और उपभोग करने के अधिकार का दावा कर सकता है, भले ही संपत्ति वास्तव में अलग और विभाजित नहीं हुई हो।*

फिर, यदि किसी अविभाजित परिवार की संयुक्त किरायेदारी उस अविभाजित परिवार के सदस्यों की साझा किरायेदारी में परिवर्तित हो जाती है, तो अविभाजित परिवार उस संपत्ति के संदर्भ में विभाजित परिवार बन जाता है, जो उस करार का विषय है, और यह हित और अधिकार में पृथक्करण है, यद्यपि इसके तुरंत बाद विषय-वस्तु का वास्तविक विभाजन नहीं होता है। इसका दावा किसी भी समय पृथक अधिकार के आधार पर किया जा सकता है।"

141. इस प्रकार, वर्तमान मामले में, यह स्थापित हो गया है कि वर्ष 1977 में श्री डी.आर. गुप्ता के निधन के बाद डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ जारी नहीं था और संपत्ति सभी विधिक वारिसों के नाम पर दाखिल ख़ारिज हो गई। स्थिति के इस तरह के विभाजन को आगे बढ़ाने के लिए, पक्षकारगण ने पांच भाइयों की प्रत्येक शाखा के शेयरों को 1/5 निर्धारित किया, जैसा कि समझौता

ज्ञापन में उल्लेख किया गया है। **इस प्रकार, भले ही पक्षकारगण के बीच सीमा और शर्तों द्वारा कोई विभाजन नहीं हुआ, एक विभाजन हुआ जिससे अविभाजित परिवार की स्थिति एक विभाजित परिवार में बदल गई।**

142. इस मोड़ पर, हम इस बात की जांच कर सकते हैं कि हिंदू विधि के तहत एक एचयूएफ का अस्तित्व समाप्त हो गया है, लेकिन राजस्व या आयकर अभिलेख में उसे एचयूएफ के रूप में दर्ज करना जारी रह सकता है।

143. कल्लूमल तपेश्वरी प्रसाद (एचयूएफ), कानपुर बनाम आयकर आयुक्त, कानपुर (1982) 1 एससीसी 447 में, अप्पोवियर (पूर्वोक्त) का उल्लेख करने के बाद, माननीय शीर्ष न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि माननीय शीर्ष न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि हिंदू विधि में यह आवश्यक नहीं है कि संपत्ति को प्रत्येक मामले में विभाजन को पूरा करने के लिए सीमा और शर्तों द्वारा या भौतिक रूप से अलग-अलग हिस्सों में विभाजित किया जाना चाहिए। स्थिति में व्यवधान किसी भी तरीके से (1) पिता द्वारा अपने जीवनकाल में अपने और अपने पुत्रों के बीच संपत्ति को समान रूप से विभाजित करके, (2) करार द्वारा, या (3) वाद या मध्यस्थता द्वारा लाया जा सकता है। पक्षकारगण को इसकी अनुमति है कि वे अपनी इच्छा के अनुसार कानून द्वारा ज्ञात किसी भी तरीके से आम किरायेदार के रूप में संपत्ति के अपने हिस्से का उपभोग कर सकें। **हालाँकि, आयकर विधि आयकर अधिनियम की धारा 171 के तहत विभाजन को**

प्रभावी बनाने के लिए अपनी कुछ शर्तें प्रस्तुत करती है। धारा 171 यह दावा करती है कि जब तक आयकर अधिनियम की धारा 171(2) के तहत यह दावा नहीं किया जाता है कि एचयूएफ का विभाजन (पूर्ण या आंशिक) हुआ है, तब तक यह आयकर के अभिलेख में विद्यमान रहेगा। आयकर अधिनियम की धारा 171 की उप-धारा 1 में एक काल्पनिक कथा शामिल है जो प्रावधान करती है कि एक हिंदू परिवार जो अब तक अविभाजित नहीं था, आयकर अधिनियम के प्रयोजन के लिए हिंदू अविभाजित परिवार माना जाएगा, सिवाय इसके कि कहां और कहां जहां तक आयकर अधिनियम की धारा 171 के तहत इसके संबंध में विभाजन का निष्कर्ष दर्ज किया गया है। विभाजन का ऐसा निष्कर्ष केवल तभी दर्ज किया जा सकता है, जब संपत्ति का भौतिक विभाजन हो चुका हो। संपत्ति के भौतिक विभाजन के बिना केवल आय का भौतिक विभाजन, विभाजन नहीं माना जा सकता।

144. इसलिए, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि स्थिति का विभाजन वर्ष 1977 में हो चुका था और वादांतर्गत संपत्ति का विभाजन, जो तब तक संयुक्त हिंदू संपत्ति की प्रकृति का था, दिनांक 01.04.1999 के पारिवारिक समझौता ज्ञापन के तहत पक्षकारगण द्वारा किया जा चुका है, लेकिन इसे अभी भी सीमा और शर्तों के आधार पर विभाजित नहीं किया गया है, लेकिन सरकारी अभिलेखों/आयकर अभिलेखों में इसका मूल्यांकन हिंदू अविभाजित संपत्ति के रूप में ही किया जाता

रहेगा और इस उद्देश्य से परिवार के किसी एक सदस्य को एचयूएफ की ओर से स्वयं का प्रतिनिधित्व करना होगा। यह वही बात है जो अपीलार्थी ने अपनी गवाही में कही है कि यह केवल सरकारी प्राधिकारियों के साथ संचार के उद्देश्य से है कि वादांतर्गत संपत्ति को "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" के नाम पर दर्शाया जा रहा है। इस प्रकार, विभाजन पहले ही हो चुका है, लेकिन अपीलार्थी ने एचयूएफ की ओर से इस तरह से सूचित किया था क्योंकि इसे तब तक सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाना था जब तक कि विभाजन वास्तव में सीमा और शर्तों के अनुसार नहीं हो जाता।

145. अंत में, हम देखते हैं कि कर्ता का स्थान एक कानूनी हक है जिसका उस व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जो वास्तव में प्रबंधकीय कार्य करता है। वर्तमान मामले में, यद्यपि प्रत्यर्थी सं. 1 या अन्य सदस्यों द्वारा अपीलार्थी पर कोई स्पष्ट प्रत्यायोजन नहीं किया गया है, फिर भी कर्ता का दर्जा और प्रबंधकीय कार्य निष्पादित करने के उसके कृत्य उसे "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" के लिए कर्ता की उपाधि प्रदान नहीं करते हैं।

यह मानते हुए कि प्रत्यर्थी संख्या 1 विधि के तहत कर्ता होने की हकदार है, उसे डी.आर. गुप्ता एंड संस, एचयूएफ की कर्ता घोषित किया जाता है।

<u>मुद्दा संख्या 1:-</u>

क्या वाद का मूल्यांकन उचित रूप से किया गया है और उस पर उचित न्यायालय फीस का भुगतान किया गया है? साबित करने का दायित्व वादी पर है

146. प्रत्यर्थी सं. 1/वादी ने कहा है कि उसने क्षेत्राधिकार के उद्देश्य से वाद का मूल्य 1,00,00,000/- रुपये से अधिक आँका है और घोषणा की राहत पर देय न्यायालय फीस 20/- रुपये निर्धारित की गई है, जिसका भुगतान किया जा चुका है।

147. न्यायालय फीस और क्षेत्राधिकार के प्रयोजन हेतु मूल्यांकन के संबंध में कानून सुस्थापित है। क्षेत्राधिकार के प्रयोजन के लिए मूल्यांकन करते समय पक्षकार उस मंच को निर्धारित करता है जहां वाद दायर किया जाना है यानी, चाहे जिला न्यायालय के समक्ष या उच्च न्यायालय के समक्ष, न्यायालय फीस के प्रयोजन के लिए वाद का मूल्यांकन अपेक्षित न्यायालय फीस निर्धारित करने के प्रयोजन के लिए होता है।

148. हम पाते हैं कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने अस्पष्ट रूप से कहा है कि वाद का मूल्य 1,00,00,000/- रुपये से अधिक है। वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 को क्षेत्राधिकार के प्रयोजन के लिए मूल्यांकन बताते समय स्पष्टता रखनी चाहिए थी। यह देखते हुए कि वादी के पास अपने वाद का मूल्यांकन करने का विवेकाधिकार है, जैसा कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने *श्रीमती शीला देवी बनाम किशन लाल कालरा* आईएलआर (1974) 2 डेल 491 में माना है और चूंकि विचारण 18 वर्षों

से अधिक समय से चल रहा है, इसलिए हम इस पहलू पर और स्पष्टीकरण मांगना उचित नहीं समझते तथा क्षेत्राधिकार संबंधी मूल्यांकन 1,00,00,000 रुपये मानते हैं।

149. अगला पहलू यह है कि इस मूल्यांकन पर देय न्यायालय फीस कितनी होनी चाहिए। घोषणात्मक वाद अनिवार्यतः किसी व्यक्ति या संपत्ति की स्थिति से संबंधित होते हैं, और इसलिए, एक अंतर्निहित अधिकार होने के कारण किसी मूल्यांकन के अधीन नहीं होते हैं। इसलिए, न्यायालय फीस अधिनियम के तहत घोषणा-पत्र के लिए वाद का न्यूनतम मूल्यांकन 200 रुपये निर्धारित किया गया है, जिस पर 20 रुपये न्यायालय फीस देय है। यह तब होता है जब वादी वाद का मूल्यांकन 200 रुपये करने का विकल्प चुनता है, जो उस मंच को भी निर्धारित करता है जहां वाद का विचारण होगा।

150. *वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1887 की धारा 8* में यह प्रावधान है कि जहां किसी वाद का मूल्यांकन क्षेत्राधिकार के प्रयोजन हेतु एक निश्चित राशि पर किया जाता है, तो न्यायालय फीस भी उसी राशि पर देय होगी।

151. चूंकि क्षेत्राधिकार के प्रयोजन के लिए वाद का मूल्यांकन 1,00,00,000/- रुपये है, इसलिए वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने 20/- रुपये की निर्धारित न्यायालय फीस का भुगतान करने में त्रुटि की है, *क्योंकि मूल्यानुसार फीस*

1,00,00,000/- रुपये की राशि पर लगनी चाहिए थी। **न्यायालय फीस अपर्याप्त है, और वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 को 1 (एक) सप्ताह के भीतर इस अपर्याप्त न्यायालय फीस को पूरा करने का निर्देश दिया जाता है।**

152. वर्तमान अपील में अपीलार्थी द्वारा सि.वि.आ.6041/2016 दायर कर 20 रुपये की निर्धारित फीस से अधिक अतिरिक्त न्यायालय फीस का भुगतान करने से छूट की मांग की गई है। **चूंकि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा वाद का मूल्यांकन 1,00,00,000 रुपये किया गया है, इसलिए अपीलार्थी वर्तमान अपील के लिए भी उसी तरीके से अपर्याप्त न्यायालय फीस का भुगतान करने के लिए दायी होगा।**

<u>मुद्दा संख्या 2: –</u>

क्या घोषणा हेतु वाद अपने वर्तमान स्वरूप में संधार्य है? साबित करने का दायित्व वादी पर है

153. अपीलार्थी की ओर से प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी कि घोषणा के लिए वर्तमान वाद संधार्य नहीं है, क्योंकि कब्जे का पारिणामिक अनुतोष नहीं मांगा गया है। चूंकि अपीलार्थी और प्रत्यर्थीगण वादांतर्गत संपत्ति के संयुक्त स्वामी और सह-स्वामी होने के नाते वादांतर्गत संपत्ति के रचनात्मक संयुक्त कब्जे में हैं, इसलिए कब्जे का पारिणामिक अनुतोष मांगने की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा दायर एचयूएफ के कर्ता होने के दर्जे पर घोषणा के

लिए वाद सरलता से संधार्य है और किसी पारिणामिक अनुतोष का दावा करने की आवश्यकता नहीं है।

154. अंत में, यह न्यायालय न्याय-मित्र सुश्री आकांक्षा कौल द्वारा प्रदान की गई सहायता की सराहना करता है।

<u>राहत</u>: -

प्रत्यर्थी सं. 1 को सक्षम प्राधिकारी के समक्ष "डी.आर. गुप्ता एंड संस एचयूएफ" का प्रतिनिधित्व करने के प्रयोजनार्थ *कर्ता* घोषित किया जाता है। अपर्याप्त न्यायालय फीस का भुगतान किया जाए। उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमें वर्तमान अपील में कोई गुणागुण नहीं मिला है जिसे एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।

(नीना बंसल कृष्णा)
न्यायाधीश

(सुरेश कुमार कैत)
न्यायाधीश

04 दिसम्बर 2023

एक */एस.शर्मा*

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्झेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*